इग्नू
जन–जन का विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-12
Hkkjrh; dgkuh

खंड

2

ckXyk] vleh vkSj vksfM+;k Hkk"kk dh dgkfu;k¡

bdkbZ 5
viu fy, 'kkdxhr % fo'ys"k.k vkSj ewY;kadu 5

bdkbZ 6
,d vfoLej.kh; ;k=k % fo'ys"k.k vkSj ewY;kadu 20

bdkbZ 7
c?kbZ % fo'ys"k.k vkSj ewY;kadu 31

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ikB;Øe fo'k"kK lfefr

प्रो. दिलीप सिंह
कुलसचिव
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
चेन्नई

प्रो. एम. षणमुखन
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
विज्ञान और तकनीकी विश्वविद्यालय
कोचिन

प्रो. तेजस्वनी कट्टिमणि
कुलपति
इन्दिरा गांधी जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक

प्रो. शम्भुनाथ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर (हिन्दी)
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

प्रो. नवनीत चौहान
हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय
बल्लभ विद्यानगर, आणन्द

ladk; lnL;

प्रो. जवरीमल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(*पाठ्यक्रम संयोजक*)

ikB;Øe la;kstd

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

[kaM la;kstu] la'kks/ku ,oa laiknu

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

ikB;Øe fuekZ.k lfefr

ikB ys[kd	*bdkbZ l-*
डॉ. सूर्यनाथ सिंह नई दिल्ली	5
प्रो. अरुण होता प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय बारासात (कोलकाता)	6 और 7

fo'k"k lg;kx
डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. हरेश परमार
सुश्री भावना सरोहा

lfpoky;h lg;kx
श्री नवल कुमार

lkexzh fuekZ.k

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

फरवरी, 2017

©*bfnjk xka/kh jk"Vªh; eqDr fo'ofo|ky;] 2017*

ISBN-978-93-86375-78-0

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में अधिक जानकारी के लिए विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से सम्पर्क करें।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

ys>j VkbZi lsfVax % टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

eqnzd %

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

[k.M 2 ifjp;

यह कहानी संबंधी माड्यूल के चौथे पाठ्यक्रम 'भारतीय कहानी' का दूसरा खण्ड है। इस खण्ड में कुल तीन इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

bdkbl 5 अपने लिए शोकगीत : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkbl 6 एक अविस्मरणीय यात्रा : विश्लेषण और मूल्यांकन

bdkbl 7 बघेई : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में अपने लिए शोकगीत (बांग्ला), एक अविस्मरणीय यात्रा (असमी) और बघेई (ओड़िया) जैसी महत्त्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् आप आशापूर्णा देवी, इन्दिरा गोस्वामी और गोपीनाथ महंती जैसे यशस्वी भारतीय कहानीकारों की कहानीकला से भी परिचित होंगे/होंगी। इन इकाइयों में भारतीय जीवन की अभिव्यक्ति हुई है।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय कहानी के विस्तृत परिसर से परिचित होने के क्रम में आगे बढ़ेंगे/बढ़ेंगी। इस खण्ड में शामिल कहानियाँ इन लेखकों की सर्वकालिक महान कहानियाँ हैं। इन कहानियों को पढ़ते हुए आप यह महसूस करेंगे/करेंगी कि हिन्दी कहानी में उपस्थित चिन्ताएं अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों में भी प्रभावशाली ढ़ंग से अभिव्यक्त हुई है।

इस खण्ड को पढ़ते हुए आप इसमें शामिल कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय पा सकेंगी/सकेंगे। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखेंगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। इस पाठ्यक्रम के तीसरे खण्ड में भी आप चार कहानियों का अध्ययन करेंगे/करेंगी।

शुभकामनाओं सहित।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

bdkbl 5 viu fy, 'kkdxhr % fo'y"k.k vkj eY;kdu

bdkbl dh :ij[kk

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 आशापूर्णा देवी का रचनात्मक विकास

5.3 तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक वातावरण और बांग्ला कहानी

5.4 भारतीय मूल्य और आशापूर्णा देवी की कहानियों का स्वर

5.5 'अपने लिए शोकगीत' कहानी का विश्लेषण

5.6 कहानी का सकारात्मक पक्ष

5.7 कहानी के प्रमुख चरित्र

5.8 कहानी का शिल्प

5.9 सारांश

5.10 अभ्यास

5-0 mís';

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- बांग्ला में नई कहानी के विकास को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- आशापूर्णा देवी के रचनात्मक विकास को समझा सकेंगे/सकेंगी।
- भारतीय मूल्यों को ध्यान में रखते हुए आशापूर्णा देवी की कहानियों का विश्लेषण कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'अपने लिए शोकगीत' कहानी की व्याख्या कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'अपने लिए शोकगीत' के प्रमुख पात्रों की चर्चा कर सकेंगे/सकेंगी।
- इस कहानी के शिल्प पर प्रकाश डाल सकेंगे/सकेंगी।

5-1 çLrkouk

आशापूर्णा देवी बांग्ला साहित्य की ऐसी कथाकार हैं, जिन्होंने घर के भीतर की समस्याओं और मनुष्य की क्षुद्रताओं, विडंबनाओं को रेखांकित किया। जब उन्होंने लिखना शुरू किया, भारतीय समाज एक तरह के संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। वही समय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का काल है। उस वक्त भारतीय राजनीति में उथल-पुथल मची हुई थी। एक तरफ आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों, विसंगतियों के खिलाफ समाज सुधार आंदोलन चल रहे थे। एक तरफ गांधीजी की अगुआई में आजादी के लिए संघर्ष चल रहा था तो दूसरी तरफ स्त्रियों के अधिकारों, समाज के दबे-कुचले लोगों, कल-कारखानों में काम करने वाले लोगों के जीवन में बेहतरी लाने के लिए आंदोलन चल रहे थे। इस मामले में पश्चिम बंगाल में कुछ अधिक सक्रियता दिखाई

दे रही थी। इस तरह कई विचारधाराएं आपस में टकरा भी रही थीं। कुछ लोग भारतीय मूल्यों और परंपराओं को आधार बना कर अपनी बात रख रहे थे तो कुछ विदेशी विचारों के प्रभाव में आकर सामाजिक सुधार के प्रयास कर रहे थे। इसी क्रम में प्रगतिशील चेतना ने दस्तक दी थी। इन विचारधाराओं का असर साहित्य और दूसरी कलाओं में भी दिखाई देने लगा था।

मगर आशापूर्णा देवी ने उन तमाम आंदोलनों से प्रेरणा लेने उनके सिद्धांतों को अपने लेखन में उतारने के बजाय मनुष्य की मूल प्रवृत्ति को समझने, उसे रूपायित-रेखांकित करने पर जोर दिया। सामाजिक विसंगतियों से पहले घर के भीतर की विसंगतियों को उठाना बेहतर समझा। इसलिए उनके लेखन में किसी तरह का नारा नहीं है, किसी खास विचारधारा की पैरवी नहीं है। उन्होंने जो कुछ जीवन में देखा, वही लिखा।

कहते हैं, मनुष्य को ठीक से समझे बिना समाज को समझने और उसमें बेहतरी के प्रयास पूरी तरह कामयाब नहीं हो सकते। इसलिए आशापूर्णा देवी ने मनुष्य को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखना शुरू किया। खासकर स्त्रियों की समस्याओं को उन्होंने अलग ढंग से देखा। वे कहती भी थीं कि स्त्री की दुश्मन सबसे पहले और सबसे अधिक स्त्री ही है। उन्होंने अपनी अनेक कहानियों में दिखाया कि किस तरह एक सास अपनी बहू का शोषण करती, उसे प्रताड़ित करती है। किस तरह मां बेटी के रिश्तों में कड़वाहट आती है। एक तरफ तो वह घर को संभालने-सहेजने में हर तरह के समझौते और संघर्ष को तैयार रहती है, मगर दूसरी तरफ कभी-कभी अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए उसका अहंकार, उसकी अधिकार भावना इतनी प्रबल हो उठती है कि वह एकाधिकारवादी की तरह व्यवहार करने लगती है। आशापूर्णा देवी ने घर के भीतर अधिकारों के टकराव, सम्मान के लिए संघर्ष, अपने वजूद के लिए लड़ते और अपने ही बनाए-सजाए घर के भीतर एक तरह से बेदखल जिंदगी गुजारते लोगों का जैसा चित्रण अपनी कहानियों में किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इस पाठ में आशापूर्णा देवी की जो कहानी हम पढ़ने जा रहे हैं, उसमें भी घर के मुखिया के अप्रासंगिक हो उठने से पैदा हुई पीड़ा और आकांक्षाओं का निर्मम चित्रण है। इस कहानी के बारे में पढ़ने से पहले आइए उस समय की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के बारे में समझते हैं, जब आशापूर्णा देवी ने लिखना शुरू किया। आशापूर्णा देवी ने क्यों अपने समय में प्रचलित बांग्ला लेखन से अलग हट कर लिखना शुरू किया, उन स्थितियों के बारे में जानते हैं। इससे अपने लिए शोकगीत कहानी, जो हम यहां पढ़ने जा रहे हैं, उसे समझने में आसानी होगी।

5-2 vk'kkiw.kkZ nsoh dk jpukRed fodkl

आशापूर्णा देवी का जन्म 8 जनवरी, 1909 को एक परंपरावादी बंगाली परिवार में हुआ था। उस समय के भारतीय समाज की बनावट से आप कुछ-कुछ परिचित होंगे। उस वक्त अंग्रेजी शासन था, शिक्षा, रहन-सहन आदि के क्षेत्र में बदलाव आ रहा था। मगर समाज का स्वरूप काफी हद तक पुराना था। उसमें तमाम तरह की रूढ़ियां और संकीर्णताएं व्याप्त थीं। खासकर लड़कियों के पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई आदि को लेकर कुछ ज्यादा ही संकीर्णता थी। आशापूर्णा देवी का जीवन भी इससे अछूता नहीं रहा। उनके परिवार में दादी का दबदबा था। वे पुराने विचारों को मानने और अत्यंत संकीर्ण विचारों वाली महिला थीं। इसलिए परिवार में लड़कियों को स्कूल भेजने की परंपरा नहीं थी। केवल लड़कों के लिए पढ़ाई की व्यवस्था थी। उन्हें पढ़ाने के लिए घर में ही अध्यापक आते थे। इस तरह आशापूर्णा देवी ने अपने भाइयों को पढ़ते हुए देख और सुन कर पढ़ना-लिखना सीखा था।

उनके पिता कलाकार थे। चित्र बनाते थे और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके चित्र छपते रहते थे। वे साहित्य और कलाओं के मामले में काफी उदारमना थे। आशापूर्णा देवी की माँ एक संभ्रांत और पुस्तक प्रेमी परिवार से आई थीं। वे अपने खाली समय में कहानियों की किताबें पढ़ती रहतीं। उनकी वजह से घर में बहुत सारी किताबें और पत्र-पत्रिकाएं आती थीं। उन्हीं से आशापूर्णा और उनकी दो बहनों को किताबें पढ़ने का चस्का लगा था।

हालांकि देश में चारों तरफ राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल का माहौल था, मगर आशापूर्णा देवी उन हलचलों से बेखबर थीं। उनकी दुनिया घर की चारदीवारी के भीतर ही सिमटी हुई थी। उनके और उनकी बहनों के बीच अक्सर गीत लिखने और उसे स्वरबद्ध करके गाने की प्रतियोगिता छिड़ जाती। इस तरह आशापूर्णा को लिखने का चस्का लगा। उसी दौरान उन्होंने अपनी लिखी भबाइरेर डाक यानी बाहर की आवाज नामक एक कविता भशिशु साथी नाम की पत्रिका में छपने के लिए भेज दी। वह साल था 1922 उस वक्त आशापूर्णा देवी की उम्र मात्र तेरह साल थी। पत्रिका के संपादक थे राजकुमार चक्रवर्ती। उन्हें वह कविता बहुत पसंद आई। उन्होंने न सिर्फ वह कविता प्रकाशित की, बल्कि आशापूर्णा को पत्र लिखा कि वे अपनी कुछ और कविताएं भेजें। इस तरह आशापूर्णा देवी के लेखन का सफर शुरू हुआ।

1924 में उनका विवाह हो गया। पति बैंक में मुलाजिम थे। इस तरह एक चारदीवारी से निकल कर वे दूसरी चारदीवारी के भीतर आ गई। घर में करने को बहुत कुछ था नहीं। मगर पढ़ने-लिखने का शौक चूंकि बचपन से लग गया था, वे लिखती पढ़ती रहती थीं। शुरू में उनका लेखन बच्चों के लिए होता था, मगर बाद में उन्होंने गंभीर साहित्य में कदम रखा और उसमें भरपूर योगदान दिया। हालांकि विवाह के कुछ साल बाद उनका परिवार कोलकाता शहर में आ गया था, मगर वे शहर की गतिविधियों से प्रायः दूर ही रहती थीं। उन दिनों कोलकाता में अनेक आंदोलन चल रहे थे, रोज ही कोई न कोई साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम होता, मगर आशापूर्णा देवी उन सबसे जीवन पर्यंत दूर ही रहीं। यही वजह है कि उनके लेखन में किसी विचारधारा, किसी वैचारिक आंदोलन या राजनीतिक धारा का प्रभाव नहीं दिखाई देता।

वे घर के भीतर की दुनिया का वर्णन करने में सिद्धहस्त हैं। घर के भीतर चूंकि औरत की दुनिया ही ज्यादा होती है, आशापूर्णा की कहानियों उपन्यासों में स्त्री जीवन से जुड़ी घटनाएं, यंत्रणाएं, स्त्री के संघर्ष, उसके अहंकार, क्षुद्रताओं आदि का रेखांकन अधिक है। मगर उन्होंने पुरुषों की मानसिक बनावट, उनकी चारित्रिक कमजोरियों पर भी पैनी नजर डाली थी। 1932 में बड़ों के लिए उनकी पहली कहानी छपी थी— पत्नी ओ प्रेयसी। 1944 में पहला उपन्यास छपा— प्रेम ओ प्रयोजन। इस तरह आप अंदाजा लगा सकते हैं कि आशापूर्णा देवी ने प्रेम और दांपत्य जैसे परंपरागत विषय को लेकर लिखना शुरू किया और करीब-करीब आखिर तक स्त्री-पुरुष संबंधों के बीच इन्हीं दो बिंदुओं पर चल रहे द्वंद्व को पकड़ने—सुलझाने में लगी रहीं।

आशापूर्णा देवी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के बीच गैर-बराबरी, अन्याय, परंपरागत हिंदू परिवारों में पुरुष संकीर्णता आदि पर कठोर प्रहार किया। इस तरह उन्होंने स्त्री को पुराने परिवेश से आधुनिक वातावरण में लाने का प्रयास भी किया। इसलिए उनकी छवि एक प्रखर स्त्रीवादी लेखिका के रूप में निर्मित हुई। 13 जुलाई, 1995 को उनका निधन हुआ।

अपने जीवन में उन्होंने दो सौ बयालीस उपन्यास, सैंतीस कहानी संग्रह और बासठ बाल साहित्य की पुस्तकें लिखीं। उनके उपन्यासों में प्रथम प्रतिश्रुति, सुवर्णलता और बकुलकथा

की त्रयी ने सबसे अधिक ध्यान खींचा और उनकी अखिल भारतीय स्तर पर सराहना हुई। उन्हें साहित्य अकादेमी और ज्ञानपीठ जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों समेत अनेक सम्मानों से विभूषित किया गया।

5-3 rRdkyhu lkekftd-jktuhfrd ifjos'k vkSj ckXyk dgkuh

जैसाकि हम ऊपर बात कर चुके हैं, आशापूर्णा देवी की प्रारंभिक रचनाएं बच्चों के लिए लिखी गई हैं। विवाह के बाद उन्होंने प्रेम और दांपत्य जैसे विषय को लेकर बड़ों के लिए लिखना शुरू किया। उनकी पहली कहानी 1937 में आनंद बाजार पत्रिका के शारदीय अंक में छपी थी। उसका शीर्षक था– पत्नी ओ प्रेयसी। इस तरह आप अंदाजा लगा सकते हैं कि जब आशापूर्णा देवी ने कहानियां लिखनी शुरू कीं तब देश में कैसा वातावरण था। जैसाकि आप जानते हैं, 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। द्वितीय महायुद्ध की विभिषिका से पूरी दुनिया कराह रही थी। उस दौर में कल-कारखानों का विस्तार होने लगा था, उसी के अनुरूप चाय बगानों, कोयला खदानों और दूसरे उद्योग-धंधे आकार लेने लगे थे। इन कल-कारखानों, उद्योग-धंधों में काम करने वालों के साथ मालिकों के व्यवहार और उनकी कार्य-स्थितियों को लेकर मजदूर संगठन तैयार हो चुके थे। उन्होंने हर तरह के शोषण के खिलाफ आवाज उठानी शुरू कर दी थी। आप देखेंगे कि भारतीय राजनीति में भी इसी के अनुरूप कांग्रेस के विरुद्ध प्रगतिशील चेतना से लैस राजनेताओं ने आजादी हासिल करने की अलग रणनीति बनानी शुरू कर दी थी।

यह साल भारतीय साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में एक ऐसे संधिकाल के रूप में जाना-पहचाना जाता है जब तमाम रचनाकार-कलाकार रचना में परंपरागत मूल्यों, सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह को स्वर दे रहे थे। समाज में सामंती मूल्यों के विरुद्ध तीखा स्वर उभर रहा था। स्त्रियों की आजादी, उनकी अस्मिता की बात जोर-शोर से उठाई जा रही थी। मार्क्सवादी सिद्धांतों को ध्यान में रख कर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और रचनात्मक विकास के पैमाने तय किए जा रहे थे।

बांग्ला साहित्य में प्रगतिशील चेतना कुछ अधिक प्रखर रूप में उभरी थी। वही समय था जब रवींद्रीय प्रभामंडल से बाहर निकल कर बांग्ला रचनाकार एक नई जमीन तलाश रहे थे। रवींद्रनाथ की कोमल, रूमानी, रहस्यमयी और अध्यात्मवादी कविताओं का विरोध शुरू हो गया था। प्रगति, कल्लोल, भारती मंडल और कालिकलम जैसे लेखक संगठन तैयार हो गए थे। उन्होंने सीधे-सीधे रवींद्रीय प्रभाव में लिखे जा रहे साहित्य का विरोध शुरू कर दिया था। मगर आशापूर्णा देवी ने इनमें से किसी आंदोलन, विचारधारा से प्रेरणा ग्रहण नहीं की। हालांकि इस आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि उन्होंने किसी सोची-समझी रणनीति के तहत ऐसा किया या वे इन तमाम आंदोलनों-विचारधाराओं के विरुद्ध थीं, या उन्हें अप्रासंगिक मानती थीं। इन हलचलों से दूर रहते हुए भी आशापूर्णा देवी ने जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया वह है कि उन्होंने स्त्री अधिकारों को स्वर दिया। प्रगतिशील आंदोलन के अनेक स्वरों में एक महत्त्वपूर्ण स्वर यह भी था।

प्रगतिशील आंदोलन शुरू होने के पहले आप देखेंगे कि ज्यादातर रचनाओं में स्त्री का स्वरूप प्रेयसी का है, रमणी का है। वह श्रृंगार की वस्तु है, वह जो कुछ करती है वह पति या फिर प्रेमी के लिए करती दिखाई देती है। इसलिए उसका विरहिणी रूप, पति या प्रेमी को रिझाने वाला रूप या फिर उसके लिए तड़पती-सिसकती नायिका का रूप प्रमुख है। आशापूर्णा देवी ने स्त्री के इस रूप को गरिमा दी। उसकी संवेदना को समझने की कोशिश की, उसकी वाणी को सामने लाने का प्रयास किया। उन्हेंने दिखाया कि स्त्री में भी पुरुष

जैसी ही संवेदनाएं हैं, वह भी वैसी ही चालबाजियां करती है, अपने अस्तित्व के लिए वैसे ही अभिमानी है, उसमें भी वैसे ही संघर्ष का माद्दा है, उसी तरह घर-गृहस्थी को संभालने-चलाने का हुनर और विवेक है, जैसे एक पुरुष में आमतौर पर दिखाया जाता रहा है। उनकी पहली कहानी 'पत्नी ओ प्रेयसी' स्त्री के पारंपरिक रूप को आधुनिक मूल्यों के बरक्स रख कर तोलती है। उसके विद्रोहिणी रूप, पारिवारिक सामंजस्य बिठाने वाला रूप उकेरती है।

देखें तो आशापूर्णा देवी की कहानियां गृहस्थ जीवन की उलझनों, तनावों, घर को सहेजने-संवारने के उपायों और फिर इन तमाम स्थितयों के भीतर मनुष्य की अपनी अस्मिता को बचाने की जद्दोजहद से उपजी हैं। इनमें कहीं बच्चे का अधिकार बाधित होता है तो कहीं कोई किशोरी या किशोर अपने हक के लिए सिर उठाता नजर आता है। कहीं घर का मुखिया या गृहस्वामिनी गृहस्थी को चलाते रहने या तमाम झंझटों के बीच अपने लिए अवकाश जुगाड़ने की कोशिश में छोटे-छोटे स्वार्थ साधते, छोटी-छोटी क्षुद्रताएं करते हैं। इसमें नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के टकराव नजर आते हैं तो स्त्री की आजादी के सवाल भी सिर उठाते हैं। आशापूर्णा देवी की बहुत सारी कहानियाँ स्त्री अधिकारों और उन अधिकारों को हासिल करने की उसकी संगत-असंगत युक्तियों पर केंद्रित हैं। कहीं उसका अहंकार जागता है तो कहीं उसकी निस्सहायता है।

आशापूर्णा देवी को भरपूर उम्र मिली थी। तेरह साल की उम्र से लिखना शुरू किया था और जीवन पर्यंत लिखती रहीं। इस तरह उनका लेखकीय जीवन सत्तर साल से ऊपर था। इतने लंबे समय में दुनिया में न जाने कितने बदलाव आए, न जाने कितनी वैचारिक उथल-पुथल हुई। मगर उनके लेखन का स्वर लगभग एक-सा रहा। इसकी सबसे बड़ी वजह थी कि वे घटनाओं को नहीं, मनुष्य की मूल वृत्तियों को अपने लेखन का विषय बनाती थीं। वे कहती भी थीं, मैं पहले चरित्र को देखती हूँ, फिर उसके परिवेश को और उसी के अनुरूप समस्याओं-घटनाओं को बुनती हूँ। यों देखें तो आशापूर्णा देवी के लेखन का समय भी वही है जो शरतचंद्र विमल मित्र आदि का। इन रचनाकारों ने भी स्त्री के अस्तित्व को ध्यान में रख कर, उसकी समस्याओं के इर्द-गिर्द अनेक कहानियां लिखी हैं, मगर आशापूर्णा देवी उनसे अलग खड़ी होती हैं तो उसकी बड़ी वजह है कि वे घर के भीतर की दुनिया को जितनी बारीकी से देख पाती हैं, दूसरे रचनाकार नहीं देख पाते।

5-4 Hkkjrh; eY; vkj vk'kkiw.kkZ nsoh dh dgkfu;ksa dk Loj

जैसाकि हम ऊपर बात कर चुके हैं, प्रगतिशीलता जैसे आंदोलनों की धूम होने के बावजूद आशापूर्णा देवी ने किसी दलगत या वैचारिक खांचे में खुद को नहीं बांधा तो इसकी बड़ी वजह उनका भारतीय मूल्यों के प्रति आग्रह और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश है। वे प्रखर नारीवादी हैं, मगर आप देखेंगे कि वे पश्चिमी प्रभाव में आकर परिवार नामक संस्था के विरोध में कहीं खड़ी नहीं होतीं। उनके यहां नारीवाद का अर्थ पुरुष सत्ता से विद्रोह जरूर हो सकता है, मगर उससे अलग दुनिया का स्वप्न कतई नहीं। उनके यहां स्त्री और पुरुष दो अलग-अलग सत्ताएं नही हैं। वे परस्पर जुड़े हुए हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। यही भारतीय पारिवार व्यवस्था का मूल स्वरूप है। स्त्री और पुरुष में टकराव चिरंतन हैं, मगर दोनों का अस्तित्व भी इन्हीं के बीच बना हुआ है। साथ रह कर अधिकारों की बात होती है। अलग होकर नहीं।

इसलिए आप हर कहीं आशापूर्णा देवी के लेखन में परिवार का भारतीय स्वरूप पाएंगे। वहां संयुक्त परिवार में पीढ़ियों का टकराव है तो सास-बहू के वैचारिक मतभेद भी, मगर अलगाव का स्वर उनके यहां प्रखर नहीं है। उसी में सामंजस्य का स्वर है। आशापूर्णा देवी ने लिखा है– मैंने राजनीतिक विषयों पर नहीं लिखा, समाज सेविकाओं पर भी नहीं लिखा। घर और वर को लेकर केंद्रित रही। इनके भीतर सदा से आपस में विद्रोह रहा है, मगर वह प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देता। उसे नारीमुक्ति की पिपासा कह सकते हैं। मगर वह व्यक्तिगत नहीं था। वह समष्टिगत सामाजिक विषय था। हमारे समय में विद्रोहिणी की बात होती थी। तब तक नारीमुक्ति शब्द चलन में नहीं आया था। हालांकि नारीमुक्ति शब्द के चलन में आने, दुनिया भर में नारीमुक्ति आंदोलन शुरू हो जाने के बाद भी आशापूर्णा देवी विद्रोहिणी स्त्री की बात ही करती दिखती हैं। वे मनुष्य की मूल वृत्तियों, जीवन के यथार्थ को देखती-समझती हैं।

परिवार नामक इकाई आशापूर्णा देवी की कहानियों का मुख्य वर्ण्य विषय है। हालांकि उनकी कहानियों–उपन्यासों का परिवार बंगाली समाज का परिवार है, मगर वह बृहत्तर आयाम में अखिल भारतीय स्वरूप ले लेता है। परिवार में किस तरह पुरुष अपनी पत्नी, भाई, संतानों से कपट करता है, अपने स्वार्थ के लिए आडंबर रचता है; स्त्रियां किस तरह छल करती हैं, अपने अहंकार में किस तरह दूसरे की सत्ता को पददलित करने की कोशिश करती हैं, संतान से कपट करती हैं, आजादी के नाम पर किस तरह परिवार को उसका हक नहीं दे पातीं, यही सब आशापूर्णा देवी ने अपनी कहानियों में निर्ममतापूर्वक दिखाने की कोशिश की है।

जो कहानी हम यहाँ पढ़ने जा रहे हैं– अपने लिए शोकगीत– उसमें भी परिवार का मुखिया अपने खालीपन, परिवार के सदस्यों का मनोनुकूल सान्निध्य न मिल पाने के कारण मानसिक रूप से परेशान है। घर की मुख्य गृहिणी घर को सजा-संवार कर, व्यवस्थित रखने में तो अपने को खपाती है, मगर अपने पति की जरूरतों को ठीक से नहीं समझ पाती। परिवार में उसके लिए बेटे-बहू, पोते-पोती की जरूरतें पति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ती हैं। यह भारतीय समाज की मर्यादाओं-मूल्यों की देन है कि वह पति से अलग अपने सोने का बंदोबस्त करती है। विडंबना है कि परिवार में बेटे-बहू तो आधुनिक मूल्यों को जी रहे हैं, इसके लिए माता-पिता का कोई रोक-टोक भी नहीं है, मगर वही मां और पिता पुराने मूल्यों को जीने के लिए विवश हैं। सामाजिक लज्जा की वजह से। इसी से परिवार के मुखिया में अकेलेपन, उपेक्षित हो जाने का बोध पैदा हुआ है।

आइए, अब कहानी का विश्लेषण करते हुए इसे समझते हैं।

5-5 ^viu s fy, 'kksdxhr* dgkuh dk fo'ys"k.k

यह एक अवकाशप्राप्त यानी रिटायर्ड आदमी अविनाश की कहानी है। बच्चे-बहू, पोते-पोती से भरा-पूरा परिवार है। मगर अविनाश को लगता है कि वह अपने घर में अप्रासंगिक हो गए हैं, अकेले हो गए हैं। कोई उनका खयाल नहीं रखता। सब अपनी-अपनी धुन में व्यस्त हैं। उनके खाने-पीने, शौक वगैरह को कोई तवज्जो नहीं देता। इन सबमें उनके लिए सबसे तकलीफदेह है कि पत्नी शैलबाला भी उनसे दूर हो गई है। बच्चे-बहुओं और पोती की दुनिया में रम गई है। जिस अविनाश ने इस घर को बनाने-सजाने में जीवन लगा दिया, अब वे उसके एक कोने में डाल दिए गए हैं। एक संकरे कमरे में एक पतले से बिस्तर तक उनकी दुनिया सिमट गई है। वहां वे खुद को सहज महसूस नहीं कर पाते हैं। जिस आदमी को लंबे समय तक एक बड़े से कमरे में चौड़े पलंग पर पत्नी के साथ सोने की आदत रही

हो, उसे एक संकरी कोठरी में अकेले रहना पड़े तो असहज महसूस तो करेगा ही। मगर पत्नी के तर्क और कसम के आगे उन्होंने मुंह बंद कर रखा है। पत्नी ने उन्हें कसम दी है कि इस बारे में बच्चों के आगे मुंह नहीं खोलेंगे। पत्नी बड़े पलंग वाले कमरे में सोती है– पोती को लेकर। उसका तर्क है कि आदमी को जवानी में अपने बुजुर्गों और बुढ़ापे में अपने बच्चों से शर्म करनी चाहिए। मगर अविनाश को तो पत्नी की निकटता चाहिए। वह नहीं मिल पाती तो स्वाभाविक रूप से खिन्न महसूस करते हैं।

इस कहानी का रचाव मनोविश्लेषणात्मक है। मनुष्य के मन की भीतरी परतों को कुरेदने-पहचानने की कोशिश इसमें सार्थक हुई है। अवकाश ग्रहण करने के बाद व्यक्ति में एक तरह का खालीपन आ जाता है, उसे अपनी ताकत क्षीण महसूस होने लगती है। लगता है कि बच्चे उसकी बातें नहीं मानते। घर के सारे सदस्य अपनी मर्जी चलाने लगे हैं, उससे कोई सलाह नहीं लेता, उसकी बातों को अहमियत नहीं देता। ऐसे लोगों को आपने भी अपने आसपास देखा होगा, उनकी ऐसी प्रवृत्तियों को जाना-पहचाना, महसूस किया होगा। दरअसल, यह एक मनोवैज्ञानिक बदलाव होता है। जिस तरह व्यक्ति में उम्र के हर पड़ाव पर आदतों में कुछ बदलाव देखे जाते हैं, उसी तरह रिटायरमेंट के बाद व्यक्ति की आदतों में बदलाव आता है। इस कहानी के मुख्य पात्र अविनाश में ये मनोवैज्ञानिक लक्षण सहज ही देखे जा सकते हैं।

अविनाश जब तक नौकरी में थे, उन्हें घर और दफ्तर के कामों के बीच तालमेल बिठाना पड़ता था। समय कम होता था। सुबह उठते ही दफ्तर भागने की हड़बड़ी, फिर शाम को लौट कर आते तो थकान चढ़ी होती। अवकाश प्राप्त करने के बाद दफ्तर जाने की हड़बड़ी, वहां की जिम्मेदारियों की चिंता से वे मुक्त हो गए हैं। दिन भर खाली हैं, घर में ही रहना है। और घर की जिम्मेदारियां भी अब बेटे और बहुओं ने संभाल रखी हैं। ऐसे में घर में रह कर समय काटना एक बड़ी समस्या है। इसलिए अपने लिए कुछ काम उन्होंने खुद तलाश लिए हैं। बेटे-बहू के न चाहते हुए भी। सुबह की सैर के लिए निकलते वक्त दूध की बाल्टी साथ ले जाते हैं। अभी तक उनका परिवार पैकेट के दूध पर निर्भर रहा आया है। मगर अब उनका तर्क है कि पैकेट का दूध बच्चों को देना सेहत के लिए ठीक नहीं है। खटाल से ताजा दूध लाना चाहिए। इस तरह उन्होंने अपने लिए सुबह का एक काम तलाश लिया है। हालांकि इसके लिए बेटे-बहू का उन पर कोई दबाव या मनुहार नहीं है। फिर शाम को जब नौकरानी बच्चे को पार्क में घुमाने लेकर जाती है, अविनाश भी साथ हो लेते हैं। इसके लिए उन्होंने तर्क जुटाया है कि इस तरह बच्चों को नौकरानी के भरोसे छोड़ना ठीक नहीं। आजकल बच्चों के चोरी की कितनी घटनाएं हो जाती हैं।

फिर दिन भर का खालीपन कैसे कटे, तो सुबह काफी देर तक अखबार पढ़ते हैं। उसमें छपी खबरें जोर से बोल कर रसोई में काम कर रही अपनी पत्नी को सुनाते हैं। मगर वहां से उन्हें कोई प्रतिक्रया नहीं मिलती। अविनाश जानते हैं कि शैलबाला को इन खबरों में कोई रुचि नहीं है, इसलिए विषय बदल देते हैं। रसोई में पक रही चीजों के बारे में चर्चा करते हैं– क्या पका रही हो। लगता है हलवा बना रही हो। आलू-मिरिच पका रही हो क्या? नहीं, शायद अंडा भुजिया बना रही हो। डालडा में या सरसों के तेल में पका रही हो? खुशबू तो अच्छी आ रही है। इस तरह वे पत्नी से किसी न किसी तरह संवाद बनाने की कोशिश करते हैं।

बुजुर्गों में यह एक तरह का स्वभावगत परिवर्तन होता है। खालीपन में उनसे कोई बातें करता रहे, उनकी बातें सुनता रहे तो उन्हें सुख मिलता है। अगर कोई उनकी बात नहीं सुनता तो उन्हें झुंझलाहट होती है, उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। फिर अगर

पत्नी भी उनका साथ न दे, उनके पास बैठ कर बातें न सुने-कहें तो यह झुंझलाहट और बढ़ जाती है। आपने भी अपने घर या पड़ोस में ऐसे बुजुर्गों को लक्ष्य किया होगा। इस उम्र में बुजुर्गों को इसलिए छोटे बच्चे प्रिय लगते हैं कि वे देर तक उनके साथ समय बिता पाते हैं। अगर कोई छोटा बच्चा उनके साथ नहीं होता तो पत्नी की निकटता चाहते हैं। इस कहानी में अविनाश की पोती है, जिससे वे देर तक बातें कर सकते हैं। मगर वह स्कूल चली जाती है। फिर लौट कर अपनी दादी के साथ ज्यादा वक्त बिताती है। पत्नी भी बेटे-बहुओं और पोती के काम में मदद करने के बहाने खुद को व्यस्त रखती है। दोनों बेटे दफ्तर जाते हैं, फिर लौट कर अपनी पत्नियों के साथ ज्यादा समय बिताते हैं। मुश्किल से सुबह-शाम की चाय के वक्त अविनाश के साथ बैठ पाते हैं। इसलिए अविनाश के साथ बैठने, बात करने वाला कोई नहीं है। जबसे शैलबाला ने अविनाश का कमरा अलग कर दिया है, दोनों अलग-अलग सोने लगे हैं, तबसे अविनाश और अकेले पड़ गए हैं। शैलबाला से बातें कम हो पाती हैं। इससे उनके भीतर बेचौनी और बढ़ गई है।

जब बेटे दफ्तर चले जाते हैं तो अविनाश बाजार में घूमने निकल जाते हैं। वहां से तरह-तरह की सब्जियां खरीद लाते हैं। ऐसी सब्जियां, जिन्हें उनके फैशनपरस्त बेटे-बहू पसंद नहीं करते। मगर अविनाश अपने बचपन के दिनों और ग्रामीण परिवेश में उन सब्जियों के महत्त्व को याद करते हुए उन्हें खरीद लाते हैं। उन्हें नौकरानी से पकवाते और खाते हैं। बुढ़ापे में उनकी भूख और तृष्णा जैसे बढ़ गई है। रसोई में कुछ भी पकता है, उसकी सुगंध उन्हें बेचौन करने लगती है। दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते हैं। बेटों के लिए टिफिन बनता है या पोती के लिए, उसमें से लेकर चखते जरूर हैं। मगर एक बात उन्हें भीतर ही भीतर बेचौन किए जाती है कि उनसे बात करने, उनकी बात सुनने के लिए किसी के पास वक्त नहीं है।

यह स्थिति एक तरह से पीढ़ियों के टकराव को भी जन्म देती है। बुजुर्ग हो चुके माता-पिता को लगता है कि उनके बेटे-बहू उनकी कहा नहीं मानते, अपनी मर्जी चलाते हैं। बच्चों को लगता है कि माता-पिता अभी तक अपने पुराने दिनों में जी रहे हैं, बदलते समय के मुताबिक अपने को बदलने को तैयार नहीं हैं। फिर वे अपने काम-काज, बच्चों और परिवार की जरूरतों में इस कदर उलझे होते हैं कि माता-पिता को बहुत कम समय दे पाते हैं। ऐसे में दोनों के बीच स्वाभाविक रूप से कुछ फासला बढ़ जाता है। हालांकि इस कहानी में ऐसी स्थितियां नहीं हैं। तमाम व्यस्तताओं के बावजूद बेटे अपने पिता के लिए कुछ समय निकालते हैं, शैलबाला अविनाश का ध्यान रखती है। मगर अविनाश को इससे अधिक तवज्जो चाहिए। इसलिए अपने बेटों और पत्नी से फासला महसूस करने लगते हैं।

इसका नतीजा यह निकलता है कि एक दिन सोते वक्त रात में उन्हें लगता है कि जैसे उन्हें हर्ट अटैक हुआ है, हृदयाघात हुआ है। अपने शरीर में चल रही उथल-पुथल को महसूस कर कराह उठते हैं, किसी को पुकार उठते हैं। अपने भीतर चल रही उथल-पुथल को वे पूरी तरह महसूस कर रहे हैं, जैसे अर्धनिद्रा में व्यक्ति को महसूस होता है। इसलिए वे तमाम तरह की आशंकाओं से घिर जाते हैं, फिर वे यह भी सोचते हैं कि वे मर ही जाएं तो अच्छा। उनके मरने के बाद उनके बेटों और पत्नी को महसूस होगा उनका महत्त्व। फिर वे घर के हर सदस्य, रिश्तेदार की प्रतिक्रियाओं, मनःस्थितियों का अनुमान लगाने लगते हैं। वे सोचते हैं कि इस स्थिति में देख कर उनके बेटे-बहू, पत्नी परेशान होंगे, उनकी तीमारदारी में लग जाएंगे। घर में उनका महत्त्व बढ़ जाएगा। पत्नी उनके पलंग पर ही बैठ कर रात भर देखभाल करेगी। शायद यहीं मेरे साथ सो भी जाए। आज के बाद शायद पोती को बेटों के साथ सुलाने का प्रबंध करे।

पत्नी शैलबाला उनकी नब्ज देखती है और घोषणा करती है, कोई डॉक्टर-वाक्टर को बुलाने की जरूरत नहीं, अस्पताल ले जाने की तो कतई नहीं। ये जो दिन भर ऊटपटांग खाते रहते हैं, उसी से पेट में गैस बन गई है। कोई बुरा सपना आया होगा। इन्हें आराम करने दो, ठीक हो जाएंगे। इस पर बेटे उनका समर्थन करते हुए अपने पिता की खाने-पीने संबंधी गलत आदतों पर ताना मारते हैं। इस तरह उनका क्षोभ और बढ़ जाता है। मगर सोचते हैं कि पत्नी उनके पास सो जाए तो सुख मिलेगा। जब कोई गंभीर समस्या न समझ कर बेटे—बहू—बच्चे अपने-अपने कमरे में सोने चले जाते हैं, शैलबाला उनके पास अकेली रह जाती है तब वे उससे कहते भी हैं कि यहीं सो जाओ न, मेरे पास। पर शैलबाला बच्चों का खयाल कर, शर्म के मारे अपने कमरे में चली जाती है। तब अविनाश की इच्छाएं धराशायी हो जाती हैं। कामना करते हैं कि मर ही जाते तो बेहतर था। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनमें अकेलेपन से उपजी पीड़ा कितनी गहरी होगी।

5-6 dgkuh dk ldkjkRed i{k

बुजुर्गों की समस्या पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक कहानियां लिखी जा चुकी हैं। हिंदी में प्रेमचंद की बूढ़ी काकी और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी को याद कर सकते हैं। आपमें से कई लोगों ने ये कहानियां पढ़ी होंगी। उनसे तुलना करके आशापूर्णा देवी की इस कहानी (अपने लिए शोकगीत) को देखने-परखने की कोशिश कीजिए। बूढ़ी काकी और चीफ की दावत कहानी में घर के बुजुर्गों को उनके बच्चे न सिर्फ सम्मान से वंचित रखते, बल्कि उन्हें कोई फालतू चीज समझ कर घर के एक कोने में डाल देते हैं। उन्हें लगता है कि उनके माता-पिता इस लायक नहीं कि उन्हें अपने परिचितों-रिश्तेदारों के सामने लाया जा सके। 'चीफ की दावत' में बेटा मां को इसलिए घर के कबाड़खाने में छिपा देता है कि दावत पर आया उसका अधिकारी उन्हें देख कर यह न सोचे कि यह कितना पिछड़ा हुआ है। इसके अलावा ऐसे भी लोग मिल जाएंगे, जिन्हें उनके बेटों ने इसलिए अलग कर रखा है कि उनकी पत्नी उन्हें पसंद नहीं करती।

ऐसी अनेक घटनाएं हमारे समाज में देखने-सुनने को मिलती हैं। अपना रोब-रुतबा दिखाने की कोशिश में कितने सारे युवा अपने माता-पिता को पिछड़ा हुआ, असभ्य मान कर घर के किसी कोने में डाल देते हैं। कई तो अपने माता-पिता को घर से निकाल देते हैं। कई युवा अपने माता-पिता को अकेला छोड़ कर अलग घर बसा लेते हैं। आजकल विदेशों में नौकरी पाने की ललक लगभग हर युवा में देखी जाती है। इसके चलते बहुत सारे माता-पिता अपने बच्चों से दूर हो गए हैं। अकेले पड़ गए हैं। न सिर्फ उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं होता, बल्कि असुरक्षा के बीच जीवन गुजारना पड़ता है। इन्हीं स्थितियों को देखते हुए आजकल महानगरों में वृद्धाश्रम खुल गए हैं। जिन बुजुर्गों के बच्चे उनकी देखभाल नहीं करते या बात-बात पर अपमानित करते रहते हैं, वे इन वृद्धाश्रमों में शरण लेते हैं। बल्कि अब तो सरकारें भी ऐसे बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी वृद्धाश्रमों पर डालने लगी हैं।

अपने लिए शोकगीत कहानी में सकारात्मक पहलू यह है कि बुजुर्ग अविनाश को उनके बेटे-बहू ने घर से नहीं निकाला है, उन्हें असभ्य, अप्रासंगिक नहीं माना है। भरे-पूरे परिवार में वे रहते हैं। बच्चे उनके साथ भेदभाव नहीं करते। बस उनकी पत्नी शैलबाला ने बच्चों की सुविधाओं और सामाजिक मर्यादा का ध्यान रखते हुए अपनी गृहस्थी में थोड़ा-सा बदलाव किया है। अपनी और अविनाश की भूमिकाएं बदल दी हैं। बहुओं को कोई तकलीफ न हो, इसलिए उन्होंने उनके लिए बड़े और ज्यादा सुविधाओं वाले कमरों में रहने का इंतजाम किया है। अविनाश के रहने के लिए एक छोटे से हवादार कमरे में जगह बना दी

गई है। शैलबाला खुद पोती को साथ लेकर सोती हैं। यह हमारे समाज की बनावट, भारतीय मूल्यों की वजह से हुआ है। माता-पिता ताउम्र अपने बच्चों की सुविधाओं का ध्यान रखते हैं। इसके लिए अपनी सुविधाओं का त्याग कर देते हैं। यही भावना इस कहानी में भी है। भारतीय समाज की बनावट, इसके मूल्यों को इस कहानी में देखा जा सकता है।

अविनाश को भले लगता हो कि वे घर में अकेले पड़ गए हैं, मगर सच यह है कि इस परिवार में हर कोई अविनाश का ध्यान रखता है। शैलबाला जरूर दिन भर खुद को बहू-बेटों, पोते-पोतियों की सुविधाओं के लिए व्यस्त रखती हैं, मगर उन्हें हर वक्त अविनाश का खयाल रहता है। वे रोज रात को सोने से पहले अविनाश के कमरे में हर जरूरत की चीजों का जायजा लेती हैं, उनका बिस्तर ठीक करती हैं। बेटे भी प्रायः उनकी सेहत को लेकर चिंतित रहते हैं, इसलिए वे उनकी खाने-पीने की आदतों को लेकर जब-तब उन्हें टोकते-सावधान करते हैं। कहानी में कभी किसी पात्र का अविनाश के साथ अप्रिय व्यवहार नहीं देखा जाता।

अब आइए कहानी के दो प्रमुख पात्रों का विश्लेषण करते हैं। इससे कहानी के मर्म को समझने में मदद मिलेगी।

5-7 dgkuh d. çeq[k pfj=

vfouk'k

हम ऊपर बात कर चुके हैं कि अपने लिए शोकगीत कहानी के चरित्रों का स्वरूप भारतीय समाज की बनावट के अनुरूप है। अविनाश घर के मुखिया हैं। नौकरी से अवकाश प्राप्त। दोनों बेटे नौकरीशुदा हैं। इसलिए उन्होंने घर की जिम्मेदारियां संभाल ली हैं। लेकिन अविनाश को लगता है कि वे मुखिया हैं, इसलिए घर का हर काम उनकी मर्जी के मुताबिक होना चाहिए। हर बात के लिए उनसे राय-मश्विरा किया जाना चाहिए। लेकिन सबसे अधिक उन्हें यह बात बेचैन करती है कि उनकी पत्नी शैलबाला ने बच्चों की गृहस्थी में खुद को खपा लिया है। इसलिए उनके लिए तो काम ही काम हैं। घर में हर काम के लिए उनसे सलाह-मश्विरा किया जाता है। बल्कि कहें, उनकी दखल के बिना कोई काम संपन्न नहीं होता। अविनाश को यह सब पसंद नहीं। उन्हें शैलबाला की निकटता चाहिए। जबसे शैलबाला पोती को लेकर अलग कमरे में सोने लगी है, अविनाश से दूरी बना कर रहने लगी है, अविनाश की कुढ़न कुछ अधिक बढ़ गई है। वे कुछ बात भी करना चाहते हैं तो शैलबाला उसे बहुत तवज्जो नहीं देती। इस तरह अपने ही घर में अविनाश एक तरह से अकेले पड़ गए महसूस करते हैं। खुद को अप्रासंगिक हो गए समझने लगे हैं।

इसी पीड़ा और क्षोभ के चलते एक दिन सोते हुए उन्हें सपना आता है कि उन्हें फालिस मार गया है। हाथ-पांव हिल-डुल नहीं पा रहे। वे इसी अवस्था में पड़े-पड़े सोचते हैं कि अगर उन्हें हृदयाघात हो जाए, उनकी मृत्यु हो जाए तो क्या होगा। वे एक-एक कर सबकी प्रतिक्रियाओं का अनुमान लगाते हैं। पत्नी शैलबाला, दोनों बेटों, बहुओं सबकी प्रतिक्रियाओं का अनुमान लगाते हैं। वे कामना करते हैं कि उनकी मृत्यु हो जाए, तभी घर वालों को पता चलेगा कि घर में उनकी क्या अहमियत थी और उनके साथ उन लोगों ने कितने अत्याचार किए। शैलबाला को अपने अहंकार का फल मिलेगा। इस तरह वे सबसे अधिक शैलबाला को सबक सिखाने की सोचते हैं।

आशापूर्णा देवी ने इस मनोभाव की कई कहानियां लिखी हैं। 'छिन्नमस्ता' कहानी में एक विधवा माँ अपनी बहू के रवैए से परेशान है। उसके आने के बाद माँ को घर में अपनी सत्ता

समाप्त हो गई जान पड़ती है। जिस घर को सजाने-संवारने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी, जिस बेटे के पालन-पोषण में कोई कमी नहीं होने दी, उसकी हर सुख-सुविधा का उसने ध्यान रखा, लोग उसकी सुरुचि की तारीफ करते नहीं थकते थे। वही घर और बेटा बहू के आने के बाद उसके हाथों से निकल गए। बेटा मां की बात मानने के बजाय अपनी पत्नी की बात अधिक सुनने लगा। बहू ने सास की सारी सुरुचि को पुरानी कह कर खारिज कर दिया। उसने घर में सब कुछ अपनी मर्जी से करना शुरू कर दिया। यहां तक कि वह सास को विधवा होने का अहसास दिलाने से भी बाज नहीं आती। यह माँ के लिए दिन पर दिन असहनीय होता जाता है। इस कुढ़न में वह कामना करती है कि दफ्तर से आते हुए उसके बेटे की दुर्घटना में मौत हो जाए और बहू विधवा हो जाए तब उसे पता चलेगा कि विधवा होने का दुख क्या होता है। संयोग ऐसा कि दुर्घटना में उसके बेटे की मौत हो जाती है। तब माँ अपनी बहू को दिलासा देती है कि कोई बात नहीं बहू, अब विधवा का जीवन स्वीकार तो करना ही पड़ेगा।

ऐसे निर्मम चित्रण आशापूर्णा देवी की कहानियों की विशेषता है। अविनाश भी एक ऐसा ही चरित्र है, जो भारतीय परिवार-व्यवस्था में मुखिया के अप्रासंगिक हो उठने से पैदा होने वाली पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।

इस कहानी का एक पक्ष यह है कि अविनाश के भीतर पैदा आक्रोश, अकेलेपन की पीड़ा परिवार की देन नहीं, बल्कि वह उनके भीतर खुद को लेकर पनपे असुरक्षाबोध की वजह से है। पहले ही हम बात कर चुके हैं कि यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। अविनाश अवकाश के बाद पूरी तरह खाली हो चुके हैं। इस खालीपन को भरने के लिए हर वक्त पत्नी को आसपास देखना, उससे बात करना चाहते हैं। बेवजह इधर-उधर घूम आते हैं। खाली बैठे रहते हैं तो कुछ न कुछ खाते रहते हैं। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब आदमी खाली बैठा होता है, उसे करने को कोई रचनात्मक काम नहीं होता तो उसे भूख भी ज्यादा लगती है। उसे हर वक्त लगता रहता है कि वह अप्रासंगिक हो गया है। अपनी अहमियत जताने के लिए बहुत सारे गैर-जरूरी काम भी करता रहता है। अपने प्रति दूसरों के व्यवहार को शक की नजर से देखने लगता है। कई बार लोगों के साथ उसकी झड़प भी हो जाती है। बुढ़ापे में बहुत सारे लोगों को चिड़चिड़ा और बेवजह घर के लोगों से उलझते, बात-बेबात रोकते-टोकते देखा होगा। ऐसी स्थिति में उसे पत्नी की निकटता अच्छी लगती है। ये सारे लक्षण अविनाश में हैं।

उनके साथ ऐसी कोई समस्या नहीं जो समाज में बहुत सारे बुजुर्गों के साथ उनके परिवार के सदस्यों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की वजह से देखने को मिलता है। अविनाश की कमजोरी यह है कि वे स्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ हैं। वे अपने को व्यस्त करने लायक कोई रचनात्मक काम नहीं तलाश कर पाते। जो काम तलाशे भी हैं, वे या तो बहुत मामूली हैं या उनका कोई महत्त्व नहीं है। फिर उनमें एक तरह का मुखिया की एकाधिकारवादी मानसिकता भी है। वे हर चीज अपने मुताबिक होते देखना चाहते हैं, चाहते हैं कि घर का सारा क्रिया-व्यापार उनके इर्द-गिर्द चलता रहे। ऐसा नहीं होता देख कर उनमें चिड़चिड़ापन पैदा होता है, निराशा और परिवार के सदस्यों के प्रति नकारात्मक भाव पैदा होता है। यहां एक विचित्रता यह भी है कि प्रायः माता-पिता अपने बच्चों को बदलते समय के अनुरूप शिक्षा-दीक्षा देते, उन्हें नए मूल्यों के अनुरूप जीने की आजादी देते हैं, मगर अपने बुढ़ापे में उन्हीं से उम्मीद करते हैं कि वे उन्हीं मूल्यों को जीएं, उन्हीं का पालन करें जो वे खुद करते आए हैं। अविनाश में भी कुछ ऐसी ही मानसिकता बनी दिखाई देती है।

'kSyckyk

इस कहानी की दूसरी महत्त्वपूर्ण पात्र है शैलबाला। अविनाश की पत्नी। शैलबाला में भारतीय स्त्री के कई आयाम हैं। वह जहां अपने बेटे-बहू की हर जरूरत, हर सुख-सुविधा का ध्यान रखती है, वहीं उम्र के अनुरूप मर्यादाओं का पालन भी करती है। पति से दूरी बना कर रहने के पीछे उसके इस तर्क से अंदाजा लगाया जा सकता है कि उसमें भारतीय मूल्यों का कितना सम्मान है। वह पति का बिस्तर अलग कमरे में लगाने के पीछे तर्क देती है कि जवानी में बुजुर्गों और बुढ़ापे में बच्चों से लज्जा करनी चाहिए। आज आधुनिक कहे जा रहे युग में इस मान्यता का प्रायः लोप ही देखा जाता है। शैलबाला के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष यह है कि वह बहुओं को भी हर तरह की सुविधाएं उपलब्ध कराती है। यहां तक कि वह उनके हिस्से का काम खुद ही करती है। जहां समाज में सास-बहू के रिश्ते में प्रायः तनाव देखा जाता है, शैलबाला बहुओं को अपने तरीके से जीने का पूरा मौका देती है। उसे कहीं भी किसी बहू की निंदा करते, अपने हिस्से के काम का बोझ भी उन पर डालते या उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक चलने के लिए दबाव डालते नहीं देखा जाता।

कहानी की विभिन्न घटनाओं से पता चलता है कि शैलबाला ने घर को बड़े सलीके से संभाला-संवारा है। बच्चों को अच्छे संस्कार दिए हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए खुद के लिए पति से अलग सोने का इंतजाम कर लिया है। ऐसा नहीं कि उसे पति की निकटता पसंद नहीं या पति की जरूरतों का उन्हें खयाल नहीं। रोज रात को सोने से पहले अविनाश के कमरे में हर चीज का जायजा लेना, हर जरूरत की चीज रखना, बिस्तर ठीक करना आदि उसका अविनाश के प्रति लगाव ही दर्शाता है। चूंकि पोती बड़ी हो रही है, उसे और बहुओं को यह न लगे कि बुढ़ापे में वे छिछोरी हरकतें करते हैं, इसलिए उसने अविनाश से दूरी बना ली है। जब अविनाश सपने में बड़बड़ाते हैं और उन्हें लगता है कि उनका आखिरी समय निकट आ गया है, उनकी स्थित देख कर सबसे अधिक शैलबाला ही परेशान होती है। लेकिन जब उनकी नाड़ी देख कर मुतमइन हो जाती है कि अविनाश को कुछ नहीं हुआ, पेट में गरमी हो जाने की वजह से वे कोई बुरा सपना देख कर घबरा गए थे तो सबसे पहले वह खुद को सामान्य दिखाने की कोशिश करती है।

यह भारतीय परिवारों में सामान्य बात है कि बड़ी से बड़ी समस्या आने पर भी माहौल को सामान्य बनाने में घर की बुजुर्ग महिलाएं सबसे पहले पहल करती हैं। उनकी सहनशक्ति परिवार के छोटे सदस्यों को बल प्रदान करती है। इस तरह देखें तो शैलबाला जहां भारतीय मूल्यों का पालन करने वाली, परिवार चलाने में निपुण है, वहीं साहसी और विषम परिस्थितियों का सामना करने वाली महिला है। जब बेटे-बहू और पोती अपने-अपने कमरे में सोने चले जाते हैं और अविनाश शैलबाला से मनुहार करते हैं कि तुम यहीं सो जाओ मेरे पास, तो शैलबाला कटाक्ष करती है कि जैसे तुम्हारा विस्तर तो इतना चौड़ा है कि इस पर कई लोग सो सकते हैं। और मन ही मन सोचती है कि बगल वाले कमरे में अगर पोती जगी होगी तो क्या सोचेगी कि बुड्ढा-बुढ़िया कमरे में प्रेमालाप कर रहे हैं। और वह लजा कर अपने कमरे में चली जाती है।

पश्चिमी रहन-सहन के प्रभाव में भारतीय परिवारों का स्वरूप जरूर काफी बदल गया है। माता-पिता और बच्चों की दुनिया अलग-अलग होने लगी है, मगर अपने लिए शोकगीत कहानी में दिखाए परिवार के मूल्य अब भी हमारे समाज में बड़े पैमाने पर बने हुए हैं। जैसाकि हम पहले बात कर चुके हैं, परिवार के बेटे अपने परिवार और घर की जिम्मेदारियों में उलझे हुए हैं। बदलते समय के मुताबिक उनका रहन-सहन हो गया है, फिर भी पिता या माँ के प्रति उनके मन में कोई कड़वाहट नहीं दिखाई देती। न कभी वे उनके पुराने

मूल्यों का मजाक उड़ाते या उसके लिए कोई उलाहना देते हैं। परिवार में उनका सामंजस्य है। यहां तक कि दोनों बेटों या बहुओं के आपसी रिश्तों में भी किसी तरह के टकराव का संकेत नहीं मिलता। इसका श्रेय निःसंदेह शैलबाला को दिया जाना चाहिए। क्योंकि परिवार में उसी के बनाए नियम-कायदे, व्यवस्थाएं लागू हैं। जिस तरह उसने बच्चों का पालन-पोषण किया है, बहुओं को आजादी और हर सुविधाएं उपलब्ध कराई है, उससे मूल्यों या अधिकारों के टकराव की कोई गुंजाइश नहीं रह गई है। शैलबाला के चरित्र का यह भी एक उजला पक्ष है।

5-8 dgkuh dk f'kYi

आशापूर्णा देवी की कहानी कहने का तरीका बहुत सीधा और सरल होता है। वे न तो कहानी को कभी गंभीर बनाने का प्रयास करती हैं न उसके जरिए दार्शनिक अंदाज में कोई गूढ़-गंभीर बात कहने का। बिल्कुल सहज भाव में, जिस तरह सामान्य रूप से घटनाओं का विवरण दिया जाता है, उसी अंदाज में वे कहानी क्रमवार ढंग से कहती चलती हैं। कोई प्रतीक विधान नहीं, कोई छायाभाष या कलात्मक प्रदर्शन के मकसद से कहानी को उलझाने की कोशिश नहीं करतीं। 'अपने लिए शोकगीत' कहानी एक सामान्य घटना से शुरू होती है— रात को सोते वक्त अविनाश के भीतर पैदा हुई बेचैनी से। फिर दिन भर की गतिविधियों पर विचार करते हुए कहानी बड़े सहज ढंग से खुलासा कर देती है कि अविनाश का व्यक्तित्व कैसा है, उनकी पत्नी और बच्चों का स्वभाव कैसा है, परिवार की स्थितियां क्या हैं। एक सामान्य घटना कहानी का रूप ले लेती है।

यही आशापूर्णा देवी की विशेषता है। वे सामान्य घटनाओं को कथा का विषय बना देती हैं। यह देख कर कई बार हैरानी होती है कि जो घटनाएं हमारे जीवन में आए दिन घटती रहती हैं, वही किस तरह आशापूर्णा देवी के यहां आकर एक मार्मिक कहानी में ढल जाती हैं। अपने लिए शोकगीत कहानी भी ऐसी ही है। ऐसी घटनाएं हम रोजमर्रा की जिंदगी में देखते-सुनते रहते हैं, बुजुर्गों से अपने परिवार के सदस्यों के व्यवहार-बर्ताव के बारे में सुनते रहते हैं, उनके मनोभावों, पीड़ा को जानते-समझते हैं। मगर शायद कभी इतने आहत नहीं होते जितने आशापूर्णा देवी की कहानी में वैसी ही घटना पढ़ कर हो उठते हैं।

वे क्षण भर की अनुभूति को भी कहानी का विषय बना देती हैं। और देख कर हैरानी होती है कि वह क्षण कितनी बड़ी परिघटना, कितने मूल्यवान विचार का वाहक बनता है। मन में उठा कोई सामान्य विचार, कोई सामान्य अनुभूति उनके यहां किसी बड़े और गंभीर विषय की तरह प्रकट होते हैं। अपने लिए शोक कहानी में भी यही होता है— अविनाश को सोते वक्त अपने शरीर में असहज प्रतिक्रिया महसूस होती है और वही अनुभूति कहानी का रूप ले लेती है।

जिस तरह सामान्य अनुभव बोध को आशापूर्णा देवी अपनी कहानियों का विषय बनाती हैं, उसी तरह वे बहुत सरल और सपाट तरीके से उसे कहती चलती हैं। न तो कथन में कोई उलझाव-बिखराव रहता है न भाषा में। भाषा अत्यंत सरल, सहज और प्रवाहमान है। पाठक को लगातार एक जिज्ञासा में लिए चलती है कि आगे क्या होने वाला है। मनुष्य की क्षुद्रताओं, विडंबनाओं पर उन्होंने कस कर प्रहार किया है, मगर कहीं भी उनकी भाषा में कड़वाहट, कोई भदेसपन नहीं आने पाया है। यथार्थ के नाम पर जिस तरह भाषा में भदेश शब्दों, गालियों, मुहावरों का इस्तेमाल होना शुरू हुआ, आशापूर्णा देवी उससे दूर ही रहीं। प्रस्तुत कहानी अपने लिए शोकगीत में आप देख रहे हैं कि किस तरह भाषा बिल्कुल सहज और ग्राह्य है, न कोई कड़वाहट, न कोई भदेसपन। ऐसा इसलिए कि आशापूर्णा देवी अपनी

भाषा और शैली को लेकर अत्यंत सजग हैं। वे न तो वैसी भाषा का प्रयोग करना चाहती हैं जो पाठक के मन में वितृष्णा पैदा करे या उसे समझने में उसे कोशिश करनी पड़े। उसी तरह उनकी कहानियों का रचाव सहज ढंग से घटनाओं को प्रस्तुत करता चलता है।

आशापूर्णा देवी ने लिखा भी है, अनेक क्षेत्रों में जीवन काफी नग्न, काफी निर्लज्ज है। साहित्य में उसे ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करना जरूरी है, मगर फिर भी एक आवरण की जरूरत है। और यह आवरण है भाषा की शालीनता। शालीन भाषा में सब कुछ अभिव्यक्त करते हुए ही एक स्वस्थ शिल्प को आकार दिया जा सकता है। क्या ऐसे लेखन को अयथार्थ करार देकर फेंक देना उचित होगा?

5-9 lkjka'k

- आशापूर्णा देवी का जन्म एक परंपरावादी बंगाली परिवार में हुआ। परिवार में दादी का दबदबा था। लड़कियों को स्कूल भेजने की परंपरा नहीं थी। इसलिए आशापूर्णा की पढ़ाई-लिखाई घर पर ही हुई। शादी के बाद भी वे घर की चारदीवारी में बनी रहीं। इसलिए उनकी कहानियों के विषय घर के भीतर की दुनिया में मनुष्य, खासकर स्त्रियों के संघर्ष से उपजे हुए हैं।
- तेरह साल की उम्र में आशापूर्णा देवी ने लिखना शुरू कर दिया था। शुरू में बाल साहित्य लिखती रहीं, फिर बड़ों के लिए लिखना शुरू किया।
- आशापूर्णा देवी ने ऐसे समय में लिखना शुरू किया जब एक तरफ आजादी के लिए संघर्ष जोरों पर था और दूसरी तरफ सामाजिक रूढ़ियों, विसंगतियों के खिलाफ विद्रोह के स्वर उठ रहे थे, स्त्री स्वातंत्र्य, आधुनिक शिक्षा आदि पर बल दिया जा रहा था।
- उसी दौर में प्रगतिशील आंदोलन शुरू हुआ था। बंगाल में रवींद्रनाथ की कोमल, रहस्यमयी और अध्यात्मवाद से प्रेरित साहित्य का विरोध शुरू हो चुका था।
- मगर आशापूर्णा देवी किसी दलगत या वैचारिक आग्रह में न पड़ कर अपनी देखी हुई दुनिया से विषय उठाती और लिखती रहीं।
- अपने लिए शोकगीत कहानी में अवकाशप्राप्त अविनाश नामक व्यक्ति के मनोभावों की कथा है। इसके जरिए बुजुर्ग लोगों की मानसिक स्थिति को दिखाने की कोशिश की गई है।
- यह भारतीय परिवार व्यवस्था में बुजुर्गों की स्थिति, बड़े हो चुके बच्चों के बीच उनकी मर्यादा पालन की विवशता और फिर उससे उपजी पीड़ा को रेखांकित करती है।
- अविनाश की पत्नी शैलबाला भारतीय मूल्यों का निर्वाह करने वाली स्त्री है। वह घर-परिवार को संभालने और बेटे-बहुओं की हर सुविधा का ध्यान रखने में अपना सारा समय लगा देती है। मगर इस तरह वह अपने पति से दूर हो जाती है। इसी की पीड़ा उसके पति को सालती रहती है।
- आशापूर्णा देवी की कहानियों में भाषा और शिल्प अत्यंत सहज और सरल होता है। यथार्थ का वर्णन करते हुए भी भाषा में शालीनता होती है। अपने लिए शोकगीत में भी ऐसा ही है।

5-10 vH;kl

1) आशापूर्णा देवी के समय की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के बारे में समझाइए।

2) अपने समय के बांग्ला लेखन से आशापूर्णा देवी का लेखन किस प्रकार भिन्न है?

3) 'अपने लिए शोकगीत' कहानी के सकारात्मक पक्षों पर प्रकाश डालिए।

4) 'अपने लिए शोकगीत' के किसी एक सशक्त चरित्र पर तर्क सहित चर्चा कीजिए।

5) आशापूर्णा देवी की कहानियों, विशेषकर 'अपने लिए शोकगीत' कहानी के संदर्भ में, भाषा और शिल्प के बारे में बताइए।

bdkbZ 6 ,d vfoLej.kh; ;k=k % fo'ys"k.k vkSj eY;kadu

bdkbZ dh :ijs[kk

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कहानीकार का परिचय

6.3 कथानक

6.4 आतंक की काली छाया

6.5 अतीत का मूल्यबोध बनाम वर्तमान की भयावहता

6.6 बदलते परिदृश्य में लुप्त होती मानवीय संवेदना

6.7 भाषा-शैली

6.8 सारांश

6.9 अभ्यास

6-0 mís';

एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'भारतीय कहानी' से संबंधित खंड-2 की दूसरी और इकाइयों के क्रम में छठवी इकाई आपके सामने भारतीय लेखिका इंदिरा गोस्वामी की 'एक अविस्मरणीय यात्रा' पर यह आधारित है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप :

- इंदिरा गोस्वामी के कथा जगत से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- मूल्य-संघर्ष, स्वीकार और अस्वीकार को गहराई से समझ सकेंगे/सकेंगी।
- बदलते सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के मध्य होने वाले संघर्ष को दो पीढ़ियों की विचारधारा के बीच संघर्ष के रूप में चित्रित कर सकेंगे/सकेंगी।
- कहानी में अभिव्यक्त इंदिरा गोस्वामी की समाज-चेतना का विवेचन कर सकेंगे/सकेंगी; और
- असम के जन-जीवन के विविध परिप्रेक्ष्यों को जान सकेंगे/सकेंगी।

6-1 iLrkouk

आधुनिक असमिया के विकास में असमिया की सर्वप्रथम पत्रिका 'अरुणोदय' (1846–80) का विशेष स्थान है। असमिया की शुरुआती कहानियाँ इस पत्रिका में प्रकाशित होती थीं। असमिया के प्रारंभिक महत्वपूर्ण कहानीकारों में लक्ष्मीनाथ, साधुकथार, बेजबरूआ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुकी', 'जोनबिरि', सुरभि', 'जनका' आदि कहानी संग्रहों में बेजवरुआ ने तत्कालीन सामाजिक स्थितियों की गहरी सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

इसके साथ ही मनुष्य के आचरण, वर्ग सचेतनशीलता, भ्रष्टाचार आदि के भी चित्र मिलते हैं। बेजवरुआ से लेकर आज तक असमिया कहानी ने जो लंबी यात्रा तय की है वह बहुवर्णी, बहुआयामी तथा विविध परिप्रेक्ष्यों से युक्त है।

इंदिरा गोस्वामी का रचनाकाल 1960 के आस-पास शुरू होता है। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अंतर्विरोधों को बड़ी शिद्दत के साथ चित्रित किया है। यथार्थ के फलक पर पूर्वोत्तर भारत को देखने, समझने और अभिव्यक्त करने की सच्ची कोशिश इंदिरा गोस्वामी ने की है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के अपने-अपने सपने हैं। उन सपनों को पूरा करने के लिए दोनों पीढ़ियाँ बेचैन हैं। दोनों के संघर्ष जारी हैं। युवा-वर्ग में हताशा का जन्म होता है। बुजुर्गों की आशा किसी संभावना की तलाश में है। संभवतः इंदिरा गोस्वामी के लेखन की खूबी उनके पूर्वोत्तर भारत के लोक-जीवन को चित्रित करने में हैं। उनके लेखन में असमिया पुरुष तथा स्त्री के हृदय के आंतरिक चित्र कलात्मकता के साथ उभरते हैं। लेखिका ने हाड़ माँस से बने मनुष्य का चित्रण किया है। उसे न तो आदर्श का मोह है और न ही कोरा यथार्थ से प्रेम है। इस कहानी की चर्चा के दौरान आप इन तथ्यों की ओर भी ध्यान दे सकते हैं। साथ ही, आप देखेंगे कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी की सोच व उनके विचार में कितना परिवर्तन परिलक्षित होता है। इस प्रकार, 'एक अविस्मरणीय कहानी' अत्यंत मार्मिक कहानी है जिसमें सामाजिक पहलू तो हैं ही मर्मस्पर्शी मानवीय पहलुओं को भी वाणी दी गई है। बदलते मूल्यों पर चिंता व्यक्त की गई है! इन मुद्दों पर हम इकाई के अगले हिस्सों में चर्चा करेंगे। इस प्रस्तावना से कहानी को निःसंदेह अच्छी तरह से समझने में मदद मिलेगी, ऐसी उम्मीद की जा सकती है।

आपने इंदिरा गोस्वामी की 2008 में प्रकाशित कहानी 'एक अविस्मरणीय यात्रा पढ़ ली होगी। यदि किसी कारण नहीं पढ़ पाये हैं तो इसे पढ़ लें और तत्पश्चात् इस इकाई का अध्ययन करें।

6-2 dgkuhdkj dk ifjp;

डॉ. इंदिरा गोस्वामी (मामनि रयछम गोस्वामी) असमिया साहित्य की अत्यंत प्रसिद्ध लेखिका हैं। मास्टरपीस ऑफ इंडियन लिटरेचर, खंड-1, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया के अनुसार वह आज की असमिया महिला रचनाकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, असमिया साहित्य सभा पुरस्कार, उत्तर प्रदेश सौहार्द सम्मान, ज्ञानपीठ पुरस्कार आदि से पुरस्कृत किया जा चुका है। इंदिरा गोस्वामी का जन्म 1942 में दक्षिण कामरूप के आमराँगा सत्र के सत्रधिकार परिवार में हुआ था। इंदिरा गोस्वामी का साहित्य-जगत में प्रवेश हुआ था बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में। इंदिरा तथा उनके भाई की बाल्यावस्था का साथी था एक हाथी जिसका नाम था राजेंद्र। उसने किसी गाँववाले को कुचल डाला तो सरकारी घोषणानामा के अनुसार राजेंद्र को मारा गया। इसका गहरा सदमा लेखिका को लगा था। राजेंद्र के प्रति स्नेहभाव ने इंदिरा के जीवन को इस कदर प्रभावित किया कि उन्होंने जीवनभर प्राणी मात्र से प्रेम-भाव बनाये रखा। उनके सर्वाधिक सफल उपन्यास 'छिन्नमस्तार मनुहतु' में कामाख्या मंदिर में प्रचलित दो हजार वर्ष पुरानी बलिप्रथा का जबर्दस्त विरोध किया गया है। हाँलाकि इस उपन्यास ने परंपरावादी समुदायों में तेज हलचल मचा दी थी, लेकिन लेखिका अपने विचार में अटल रही। सन् 1961 में उनकी कहानी 'सेइ अंधार पुहारारू' (वह अंधेरा प्रकाश से भी अधिक उजला था) प्रकाशित हुई। इसी क्रम में 1962 में उनकी पहला कहानी 'चिनाकी मरम' (परिचित प्रेम) का प्रकाशन हुआ था। इंदिरा गोस्वामी ने सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं। ब्राह्मण विधवा हो या बंटाई पर खेती करने वाला किसान हो, असहाय प्राणी हो या दंगा पीड़ित, उपेक्षित प्रेमी हो या गरीब किसान, – सभी इंदिरा गोस्वामी की कहानियों के जीवंत पात्र बने हुए हैं। उनके कथा साहित्य के सौंदर्य तत्व हैं। भारतीय साहित्य के उनके अवदान के लिए उन्हें 2000 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया।

इंदिरा गोस्वामी 'रामायण' की गंभीर विदूषी हैं। उन्होंने असमिया रामायण (माधवी कंदली) और रामचरितमानस (तुलसीदास़) का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। फलोरीदा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय तुलसी पुरस्कार से सम्मानित किया है।

इंदिरा गोस्वामी ने अपने जीवन का लगभग अधिकांश समय लेखन हेतु समर्पित किया है। 'चेनाबोर स्रोत' (1972) 'अहिरण' (1974) 'ममोरे धारा तरुवाल' (1980) उपन्यासों में अपने घर से दूर निजी निर्माण कंपनियों में काम करनेवाले मजदूरों की शोचनीय दशा का चित्रण है।

उन पर हो रहे शोषणों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इंदिरा गोस्वामी को 'मामोरे धारा तरुवाल' उपन्यास हेतु 1982 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। उपन्यास लेखन के पूर्व इंदिरा गोस्वामी ने काफी फील्ड वर्क किया है। निर्माण स्थल के पास रहकर मजदूरों के जीवन का पर्यवेक्षण किया। उन्होंने वृंदावन में विधवाओं की त्रासद जिंदगी को आधार बनाकर 'नीलकंठी ब्रज' लिखा है। दक्षिण कामरूप में ब्राह्मण विधवाओं और बंटाई खेतिहरों के जीवन संबंधी चित्रण 'दाँता हातीर उँचे खोका हाउदा' शीर्षक उपन्यास में है। इसमें आजादी के आस-पास सत्रों (पीठों) में सामाजिक विन्यास के संदर्भ में ब्राह्मण विधवाओं और पीड़ितों की शोचनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह उपन्यास सर्वाधिक चर्चित हुआ है। कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है। इस उपन्यास के आधार पर 'उड़ज्या– नाम की एक फीचर फिल्म बनी। इसे कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

आप ऐसा न सोचें कि इंदिरा गोस्वामी केवल असमिया जनजीवन की लेखिका हैं। उनकी रचनाओं में असमिया जनजीवन का चित्रण है लेकिन उनका लेखन असम की भौगोलिक सीमा तक सीमित नहीं है। कश्मीर के श्रमिक जीवन 'चेनाबोर स्रोत' में है तो 'अहिरण' मध्यप्रदेश पर आधारित है। 'मामोरे धरा तरुवाल' में उत्तरप्रदेश और 'नीलकंठी ब्रज' 1976 में वृंदावन का जन-जीवन अभिव्यंजित हुआ है। इतना ही नहीं, उनका एक और महत्वपूर्ण उपन्यास हैं तेज आरू धूलि रे धूसरित पृष्ठा' (रक्तरंजित पृष्ठ 1988)। इसमें 1984 के सिक्ख-दंगे का चित्रण है। अब आप समझ गये होंगे कि इंदिरा गोस्वामी का लेखन-जगत वैविध्यमय है और इसका व्यापक फलक है।

इंदिरा गोस्वामी के लेखन-जगत के बारे में यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि उन्होंने लेखन से जीवन की यात्रा नहीं की बल्कि जीवनानुभव से लेखन जगत की यात्रा की। इंदिरा गोस्वामी सबसे पहले एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता हैं और बाद में रचनाकार। समाज के प्रति अपनी सक्रिय भूमिका के बारे में वह अत्यंत सचेत है। कथा-लेखन और शोध के अलावा उन्होंने भारत सरकार और जंगी संगठन उल्फा के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। दोनों के बीच हुई बैठक में मध्यस्थ की भूमिका निभाई। अशांत असम प्रदेश में अमन चैन की स्थापना करने की अपील की। हिंसा के मार्ग को छोड़ने का अनुरोध किया। फलस्वरूप, सरकार और सशस्त्र संगठन के बीच बैठक हुई। यह प्रक्रिया आज भी जारी है। एक जागरूक सामाजिक कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी के रूप में इंदिरा गोस्वामी की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है।

कवि, कथाकार, संपादक, निबंधकार अनुवादक, अध्यापक आदि के रूप में इंदिरा गोस्वामी न केवल असमिया साहित्य में बल्कि भारतीय साहित्य में एक उल्लेखनीय नाम है।

6-3 dFkkud

इंदिरा गोस्वामी की कहानियों में आम जनजीवन को प्रभावित करने वाले हिंसा के कुछ हृदयविदारक पहलुओं के चित्रण मिलते हैं। हिंसा के वातावरण में दमित व शंकित सामान्य लोगों के दैनंदिन जीवन नरकतुल्य बन जाता है। जीवन दुर्विसह हो उठता है। सहज जीवन असहज हो जाता है। मानव मनुष्य बनकर नहीं रह पाता। मानवता खतरे में पड़ जाती है। इंदिराजी की रचनाओं में शांति की कामना है, हिंसा की नहीं। उनकी कहानियों में मानवता को बचाये रखने का आग्रह है, दानवता को नहीं। 'एक अविस्मरणीय यात्रा' कहानी इस कोटि की है। आइए, इसके कथानक पर थोड़ा-सा विचार करें।

आप जानते हैं कि कहानी जिस मुख्य विचार, दृष्टिकोण, आधारभूत कार्य या विषय विशेष पर अवलंवित होता है उसे कथासूत्र कहते हैं। कथासूत्र को अंग्रेजी में थीम कहा जाता है। कथानक का सामान्य अर्थ होता है कथा का छोटा रूप। विशेष अर्थ में कथानक कार्य-व्यापार की योजना है। कहानी साधारणतः कार्य-व्यापार की योजना होती है। कथानक को दो भागों में विभाजित किया जाता है–(1) मुख्य कथानक (प्लाट) (2) प्रासंगिक कथा (एपीसोड)

अब हम 'एक अविस्मरणीय यात्रा' के मुख्य कथानक और प्रासंगिक कथाओं पर चर्चा करेंगे। ध्यान देने की बात है कि उपन्यास में एपीसोड खूब होते हैं कहानी में इनका होना नितांत आवश्यक नहीं है। लेकिन प्रासंगिक कथाएँ कहानी में नहीं होतीं, ऐसी बात नहीं है। आलोच्य कहानी में लेखिका ने इसका सफल निर्वहन किया है। वृद्ध सज्जन ने लेखिका और प्रोफेसर मीराजकर से बातचीत के क्रम में 'मोआमारिया क्रांति' के बारे में बताया। यह क्रांति अहोम राजाओं के खिलाफ वैष्णवों ने की थी। इसके मूल में एक हाथी ही था। कहानीकार के शब्दों में–''कीर्तिनाथ बड़बरुआ को मोआमरिया के महंत से मिलती थी। कानून यह कहता था कि महंतों को हर साल राज दरबार में हाथी भेंट करने चाहिए। एक बार इन महंतों ने बड़बरुआ का एक बीमार हाथी भेंट में दे दिया। हाथी लड़खड़ा रहा था। मंत्री को जैसे ही उस छीजे हुए बीमार पशु पर नजर पड़ी, वह बौखला उठा। उसने हाथी के साथ आये महंत के कान काट लिए ....'' बूढ़े व्यक्ति ने आगे कहा–''अगहन के इस महीने में नौ हजार मोआमरिया सैनिकों ने कीर्तिनाथ को बंदी बना लिया। वह तब रंगपुर जा रहा था। यह सब उस हाथी के कारण ही तो हुआ, उस बीमार हाथी के कारण।''

प्रासंगिक कथा मुख्य कथानक से बिल्कुल भिन्न नहीं होती। अगर होती भी है तो वह किसी न किसी रूप में मुख्य कथा को विकसित करने में सहायता पहुँचाती है। अब आपके मन में यह सवाल उठ सकता है कि इस कथा का मुख्य कथा से क्या संबंध है? यह किस रूप में मुख्य कथा को आगे बढ़ने में सहायता करती है? ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो स्पष्ट हो जायेगा कि असमिया जन-जीवन के साथ हाथी का घनिष्ठ संबंध रहा है। वन-जंगल से घिरे इस प्रदेश में हाथी बड़ी मात्रा में मौजूद थे। हाथियों का झुंड धान के खेतों में आ जाता था और सभी किसान मिलकर उन्हें भगाने में जुट जाते थे। लोगों के घर हाथी पलते भी थे। ये हाथी बच्चों से खेला भी करते थे।

जैसा कि आप जानते हैं आतंकवाद पूरी दुनिया के लिए एक बड़ा अभिशाप है। यह मानव-जीवन में भयानक विस्फोट के रूप में प्रकट होकर न केवल आर्थिक और सामाजिक विकट समस्याएँ खड़ा करता है बल्कि संपूर्ण देश की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इतना ही नहीं, यह तमाम लोगों के हृदय में अविश्वास, अनास्था, संदेह आदि भाव भर देता है। मर्मांतक पीड़ा के अंधेरे विवर में धकेल देता है सुखी मनुष्य को। लेखिका अपने सहकर्मी

IGNOU THE PEOPLE'S UNIVERSITY

साथी प्रो. मीराजकर के साथ दिल्ली से काजीरंगा (असम) के लिए यात्रा शुरू करती है। यह यात्रा अविस्मणीय बन जाती है। कैसे? यह इस कहानी का कथानक है।

असम के छात्रों द्वारा आयोजित सम्मेलन में शामिल होने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा विभाग में काम करने वाले प्रो. मीराजकर और लेखिका इंदिरा गोस्वामी आये हुए थे। शाम को वे काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान से लौट रहे थे। अचानक रास्ते में गाड़ी खराब हो जाती है। चूँकि प्रो. मीराजकर का कोई मित्र पंजाब के आतंकवादियों के हाथ मारा जा चुका था, इसलिए उस दहशत से वे अब तक मुक्त नहीं हो पाये हैं। रास्ते के किनारेवाली चाय की दुकान में लेखिका और प्रो. मीराजकर थोड़ी देर के लिए आराम करते हैं, चाय पीते हैं।

इस दुकान में एक वृद्ध व्यक्ति जो दुकान का मालिक है, से बातचीत होती है। बूढ़ी स्त्री दुकान चलाती है। उस परिवार में कभी सुख था, शांति थी अभाव का कोई नामोनिशान न था। बाढ़ के प्रकोप से खेत नदी में डूबा रहा। दो पुत्रों में से बड़े की मृत्यु पिछले साल आई बाढ़ में किसी बिमारी के कारण हो गई। उसकी पत्नी है, एक पुत्र भी। वृद्ध की एक बेटी भी है जिसका किसी भारतीय सैनिक से प्रेम हो गया है। छोटा बेटा किसी सशस्त्र संगठन में शामिल हो गया है। वह घायल होकर झोपड़नुमा दुकान में आता है और अपनी बहन को देखकर अत्यंत क्रोधित हो जाता है और अत्यधिक प्रहार करता है। चाय के लिए दिये गये पैसे देखकर उसे उठा लेता है और खरीददारों से कुछ और पैसे माँगता है ताकि वह पोचर लोगों से एक अमरीकी कारबाइन खरीद सके। दोनों ग्राहक विस्मय-विमढ़ हो एक दूसरे की ओर देखने लगे।

संक्षेप में 'एक अविस्मरणीय कहानी' की यह कथा है। लेकिन आप जानते हैं कि कहानी की कथा और उसके कथानक दोनों एक नहीं होते। दोनों में एक मूलभूत अंतर होता है। कथा घटनाओं का समावेश है तो कथानक उसके कार्य-व्यापार का। पुनः कथानक के तीन बिंदु होते हैं प्रारंभ, मध्य या विकास और चरमोत्कर्ष। इनमें सुसंबद्धता, क्रमबद्धता आदि का होना आवश्यक है। जहाँ तक आलोच्य कहानी के प्रारंभ, विकास और चरमोत्कर्ष का सवाल है, ये तीनों सुसंगत रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कथानक अत्यंत गठा हुआ है। प्रसंग के अनुकूल है। वस्तु का चरमोत्कर्ष कहानी के अंत में आया है जब वृद्ध व्यक्ति के दूसरे लड़के ने लेखिका और उसके मित्र को संबोधित करते हुए कहा–'' आप आसानी से कुछ और रकम दे सकते हैं तो लाइए, निकालिए। मेरे पास समय नहीं है।–– इस कहानी का कथानक सरल किंतु प्रवाहमय है। कहानीकार की अनुभूति अत्यंत सघन और यथार्थ है। इसी अनुभूति की प्रेरणा से कहानी का कथासूत्र गढ़ा गया है।

6-4 vkrad dh dkyh Nk;k

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि आतंकवाद पूरे राष्ट्र की ही नहीं, सारी दुनिया की गंभीर समस्या है। आतंकवाद अतिवाद का ही घिनौना रूप है। भारत के अनेक–राज्यों में इसकी भयावह स्थिति है। कहीं वर्गजन्य आतंकवाद है, कहीं क्षेत्रजन्य तो कहीं धर्मजन्य। धार्मिक, सांप्रदायिक, राजनैतिक आतंकवाद ने देश को लुंज-पुंज कर दिया है। इसकी धधकती आग से देश तो दहकता ही है, मानवता भी कराहती है। ऐसी स्थिति में एक संवेदनशील रचनाकार का अन्तर्मन कराहने लगता है। आतंकवाद सबसे बड़ा खतरा है मनुष्य का, मानवता का। 'एक अविस्मणीय यात्रा' में असम का संदर्भ है। लेकिन यह कोई भी प्रांत हो सकता है। पंजाब, बिहार, त्रिपुरा, बंगाल, आंध्रप्रदेश या कोई भी राज्य हो सकता है। सर्वत्र इसका एक-सा रूप होता है। एक ही तांडव मचा रहता है।

इंदिरा गोस्वामी ने आतंकवाद के घिनौने रूप को अपनी आँखों से अति निकट से देखा है। 1984 का दंगा हो या असम का उपद्रव, लेखिका ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अतिवाद के मारक व संहारक रूप का जीवंत चित्रण किया है। उन्होंने महसूस किया है कि आतंकवाद से राष्ट्रीय विकास, एकता, शांति आदि बाधित होते हैं। आतंकवाद की काली छाया अपना हाथ बढ़ाते ही देश की शांति, उसके अमन-चैन एवं उसकी सुरक्षा की स्थिति को क्षति पहुँचती है।

'एक अविस्मरणीय यात्रा' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखिका ने आतंकवाद की गहराई में डूबकर उसके मूल कारण को ढूँढ लिया है। वृद्ध सज्जन का छोटा बेटा हिंसा की राह पर चलने के पीछे उस परिवार की अभावग्रस्तता कम जिम्मेदार नहीं है। कभी यह परिवार संपन्न था। सारे साधन मौजूद थे। आज परिवार दाने-दाने को मोहताज है। न कोई जमीन बची कि खेती करके पेट पाला जा सके। यूँ ही कोई हथियार कहाँ उठा लेता है? उसके पीछे तमाम कारण होते हैं, काफी जद्दोजहद होती है। छोटा बेटा उस पथ का राही बनता है या बनने को मजबूर होता है। युवा है, गरम खून है। अपने सपने को पूरा करने के लिए दिग्भ्रमित हो जाता है। लेकिन वृद्ध सज्जन को अपने बेटे के इस मार्ग पर चलने की बात कतई पसंद नहीं है। इसलिए तो बच्चे की माँ के बार-बार कहने पर भी वे उसे ढूँढने नहीं जाता। बहाना कर देता हैं कि आँखें ठीक से नहीं दिखाई देतीं, पैरों में भारी दर्द है। और भी, जब रुपये लेकर अंधड़ की तरह छोटा बेटा जाने को होता है तब कहानीकार ने बूढ़े बाप की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है–"बूढ़े के होठों पर अब एक प्रकार की मुस्कुराहट-सी दौड़ गयी थी। अपने जीवन में मैंने पहले कभी ऐसी मुस्कराहट नहीं देखी थी।" दरअसल कहानीकार आतंकवाद को देश का सबसे बड़ा आंतरिक दुश्मन मानती हैं। बताना चाहती हैं कि यह हर प्रकार से व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए अहितकर है। इसके साथ कहानीकार सौहार्द्र, सद्भावना, भावात्मक एकता, मानव प्रेम और हार्दिक लगाव, स्नेह, प्रेम, भाईचारा के भाव को पल्लवित करना चाहती है। इन गुणों को आधार बनाया जाए तो मारक अस्त्र निष्फल साबित होंगे। राष्ट्रविरोधी शक्तियाँ कमजोर पड़ेंगी। मानवतावाद की विजय होगी। शांति कायम होगी। देश विकसित होगा।

इस कहानी के संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि आतंकवाद या जिहादी संगठन से जो जुड़ा हुआ है, वह बूढ़े व्यक्ति का दूसरा बेटा है। आपने ध्यान दिया होगा कि लेखिका ने 'युवक' कहकर उसे संदर्भित किया है। कोई नाम नहीं बताया। इतना ही नहीं, 'बूढ़े व्यक्ति', 'बुढ़िया', 'बड़े बेटे की बीबी' आदि का उल्लेख किया है। कोई नाम नहीं। बता सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ है। दरअसल, नाम कुछ भी हो सकता है। किसी नाम से संदर्भित करें, कोई फर्क नहीं पड़ता। आतंक पीड़ित, बाढ़ग्रसित इलाके के घर-घर की कहानी है यह। लेखिका भला किस किसका नामोल्लेख करती? अपने समय व समाज की गंभीर समस्या पर लेखिका ने चिंता जताई है। यह चिंता सिर्फ असम को लेकर नहीं है। उस स्थान को लेकर है जो आतंकवाद से ग्रसित है। बहरहाल, 'युवक' के मुद्दे पर थोड़ी-सी चर्चा अपेक्षित है। अपने समय की अव्यवस्था तथा असंतोषपूर्ण वातावरण में सर्वाधिक असंतोष और घुटन की स्थिति इस 'युवक' में है। न्याय, नैतिकता, सिद्धांत के प्रति उसके मन में कोई आस्था न रह गई है। इसलिए वह प्रतिक्रियाशील हो उठा है। उसमें आक्रोश उभरता है। हिंसा के मार्ग पर चल पड़ता है। विध्वंस के रास्ते को अपनाकर सब कुछ तहस-नहस कर बैठता है। यह युवक दिशाहीन है। घुटनकारी स्थिति में है।

युवक की आवश्यकताएँ समाज पूरी नहीं करता है। समाज उसे समुचित मार्ग निर्देशित नहीं कर पाता है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में अपराधी प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं। फलस्वरूप, वह हिंस्र आचरण करने लगता है। आपने इस कहानी में पढ़ा है कि युवक

अपनी बहन पर कैसा अत्याचार करता है। पशुवत् आचरण करता है। लेखिका ने स्पष्ट रूप से लिखा है–''एकाएक लड़के की नजर उस लड़की पर पड़ी जो कोने में बैठी भय के मारे काँप रही थी। वह गोली की तरह उस पर टूटा। उसने उसे बालों से पकड़ लिया और उसके पेट पर मुक्के बरसाने लगा, 'मैं तेरे इस पेट का मलीदा बना दूँगा। इस पेट में उस फौजी के जिस हरामी पिल्ले को पाल रही हो, उसे भी खत्म कर दूँगा।.... अरे गन्दी कुतिया, एक भारतीय सिपाही से प्रेम रचाती हो! थू ..... थू......–और वह उसके पेट पर अब लातें बरसा रहा था। परिणाम। उसका रक्त मिश्रित भ्रूण तक पेट से बाहर निकल पड़ा था।'' स्पष्ट है कि आतंकवाद में न कोई माँ होती है और न कोई बहन। आतंकवाद न केवल परायों का विनाश करता है, यह अपनों का भी संहार करता है। लेखिका ने इसके दुष्प्रभावों का करुण चित्र अंकित किया है।

6-5 vrhr dk eY;ck/k cuke orZeku dh Hk;kogrk

यदि आप 'एक अविस्मरणीय यात्रा' कहानी के रचना-काल पर ध्यान दें तो पायेंगे कि इक्कीसवीं शती के प्रारंभ में नयी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियां बड़ी तेजी के साथ बदल रही थीं। इस परिवर्तन से पारंपरिक मूल्यों में भी आमूल बदलाव परिलक्षित होते हैं। मानवीय संबंध प्रभावित हुआ रिश्तों में दरार पड़ने लगी। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का द्वन्द्व और संघर्ष जारी है। अतीत हो या परंपरा अपने संपूर्ण रूप में अप्रासंगिक नहीं हो जाता है। उसे हम पूर्णतया त्याज्य या ग्राह्य नहीं मान सकते। अतीत में भी भविष्य के सूत्र निहित होते हैं। नई पीढ़ी की सोच ऐसी नहीं होती। ठीक इसी प्रकार नवाचार को पुरानी पीढ़ी स्वीकार नहीं करती। पुरानी पीढ़ी अपने अतीत के स्वर्णिम दिनों की स्मृति में जीवित है। नई पीढ़ी उस अतीत को पूरी तरह मिटा देने के प्रयास में जुटी हुई है। नई पीढ़ी की तटस्थता और संवेदनशून्यता पर लेखिका ने अपनी चिंता जाहिर की है। इससे लेखकीय संवेदना को उजागर किया गया है।

बूढ़ा व्यक्ति काफी कमजोर था। उसकी धोती मुश्किल से उसके घुटनों तक ही पहुँच पा रही थी। इतना स्पष्ट हो जाता है कि वह गरीब था। लेकिन उसका कार के निकट आकर रूकना और गाड़ी खराब हो जाने की खबर पाते ही अपनी ओर से यह कहना–''सात मील दूर एक दुकान है। रुकिए, मैं आपके लिए किसी कार को रोकता हूँ। ड्राइवर उसमें बैठकर वहाँ से मिस्त्री को ला सकता है। आप मेरी दुकान में बैठिए और गरम-गरम चाय पीजिए। पान भी मिल जाएगा।'' उसकी भलमंसाहत का प्रतीक है। दूसरों के प्रति संवेदनशीलता से भरपूर होने का प्रमाण है। सहृदयता उसकी थाती प्रतीत होती है। मुसीबत में पड़े लोगों की मदद करना यानी पर दुःख कातरता श्रेष्ठ मानव मूल्य है। दरअसल, यहां बाजार-कला नहीं, मनुष्य के प्रति मनुष्य का कर्तव्य दिखाई पड़ता है। मूल्यबोध को बचाए रखने का भरपूर प्रयास है।

आत्मीयता भारतीय मूल्य है। 'अतिथिदेवो भव' हमारी परंपरा रही है। बूढ़े व्यक्ति ने इस मूल्य को भी बचाए रखने में सफलता पाई है। तभी वह कहता है–''ओ निर्मली की माँ, ग्राहकों को अपनी दुखभरी कहानियां सुना-सुनाकर परेशान न कर। वे थके हुए हैं। इन्हें चाय दे।'' कुछ ही देर में फिर पूछता है–''इन्हें चाय दी? ये काजीरंगा से लौट रहे हैं। काफी थके होंगे। बिस्कुट भी दो चाय के साथ।''

बूढ़े व्यक्ति का अतीत से प्रेम है परंतु वह अतीतजीवी नहीं है। वह अपने सुखद अतीत को भुला नहीं पाता। यूँ कह सकते कि भुलाना नहीं चाहता। वह अपनी अस्मिता की तलाश उस अतीत में करता है। उसका अतीत सुख व समृद्धि से परिपूर्ण था वह कहता है–''हम भी

कभी इज्जतदार लोग थे। हमारे दो खलिहान थे जो धान से भरे रहते थे। कोई भी मेहमान आता था तो उसकी सुगंधि वाले चावल और काओई मछली से मेहमानवाजी होती थी। हम बड़बरूआ परिवार से हैं। इस परिवार को यह अधिकार था कि वह दंडस्वरूप अपराधियों के घुटने तोड़ दे। लेकिन मेरे पिता दयालु व्यक्ति थे। अगर दिन का समय होता तो मैं आपको अपने घर ले चलता और आपको वह सब चीजें दिखाता जिनसे हमारी प्रतिष्ठा झलकती थी। एक खास तरह की टोपी है जो किसी तरह बची रही छाता है, चांदी का एक बर्तन है, सज-धजवाला पलंग है और चांदी का सरौता है। लेकिन हमारे धान के खेत, जो मुझे जान से भी ज्यादा प्यारा थे और जो सोना और मोती उगलते थे। अब नहीं रहे।''

वृद्ध व्यक्ति ने बड़े जतन से दोतारे को सम्हाले रखा है जिसे वह मुश्किल से बाढ़ से बचा पाया था। दोतारे को बचाने का आशय है लोक-कला को बचाए रखना। पद्मप्रिया वैष्णवी के गीत के बाद कुछ दूसरे वैष्णव संतों के गीत सुनाये थे। अपने सुनहरे अतीत को पुनर्जीवित करने का ईमानदार प्रयास था। बूढ़ी का बार-बार टोकना कि रेल की पटरी के पास चलकर अपने बेटे को ढूंढ़ने जाने के लिए कहना वर्तमान का यथार्थ है। अपने समय का सत्य है। विषैला वातावरण की ओर इशारा है। सेना का छोटे बेटे के पीछे पड़ना भयानकता का सूचक है। जवान लड़के की आंख से लेकर होंठ के बीच एक गहरा घाव था। घाव से खून रिस रहा था। गोली लगी थी अथवा तेज चाकू चला था। वर्तमान कठोर है। गरीबी के थपेड़ों से प्रभावित है। बुढ़िया के माध्यम से यह स्वरूप बार-बार उभरता है। वर्तमान घिरा हुआ है तमाम समस्याओं से। बूढ़ा के अलावा अन्य सभी पात्र उन्हीं समस्याओं से जर्जर हैं। बूढ़ा भी पीड़ित है लेकिन निराश नहीं है। अतीत के स्वर्णिम क्षणों को आधार बनाकर, मूल्यबोध को बचाए रखकर अदम्य जिजीविषा के साथ तमाम स्थितियों का मुकाबला करता है। उसके गीत सुनकर मीराजकर कुछ पैसे देते हैं तो वह स्पष्ट कहता है—''मेरे गीत तो संतों के गीतों की गूंज भर हैं। अगर उनके कोई दाम चुकाये तो मुझे तकलीफ होती है। कोई मेरी भावना नहीं समझता, कोई नहीं।'' मर्मांतक पीड़ा है बूढ़े व्यक्ति के कथन में। उसने रूपये ठुकराये। रूपये के प्रति न कोई लोभ दिखाया और न मोह। लेकिन जवान लड़के की नजर सिर्फ रुपये पर रहती है। न केवल वह थाल पर रखे गये रुपये उठा लेता है बल्कि आगंतुकों को कुछ और रुपये देने के लिए कहता है। अस्त्र खरीदना चाहता है—अमेरिकी कारवाइन।

बूढ़ा व्यक्ति शांति, मैत्री, सद्भाव, सौहार्द की स्थापना का प्रयास करते हुए संतों के गीत गाता है तो उसी का जवान बेटा हिंसा, प्रतिहिंसा, प्रतिरोध के लिए अथवा व्यवस्था की हत्या करने के लिए आतंक मचाए फिरता है। उसके समक्ष पिता का प्यार, मां का स्नेह, बहन के प्रेम का कोई महत्व नहीं है। पैसे के सामने इन सभी नाते-रिश्तों को वह बौना और लूला-लंगड़ा समझता है। येन-केन प्रकारेण वह जवान लड़का अपना लक्ष्य हासिल करना चाहता है। उसका लक्ष्य है आतंक, दहशत, उपद्रव और विध्वंस। वास्तव में वह नहीं समझ रहा है कि वह कुछ भी नहीं कर रहा है। उससे ये सब करवाया जा रहा है। वह तो मात्र साधन है। किसी के इशारे पर नाचने वाला एक पुतला भर है। उसका अगर किसी पर भरोसा है तो वह मानवता विरोधी और मनुष्य का संहार करने वाली ताकतों पर।

इस प्रकार आप देखेंगे कि पूरी कहानी में संघर्ष है, मूल्य-संकट है। अन्धड़ है लेकिन बिजली की चमक भी है। अंधेरे सुरंग में यात्रा है तो उसे जल्द या निकट भविष्य में पार कर जाने की अटूट जिजिविषा है, साहस है। निराशा में भी आशा का संचार होता है। अनास्था में आस्था की आवाज गूंजती है। अतः इस कहानी में अतीत का मूल्यबोध बनाम वर्तमान की वीभत्सता के तमाम चित्र अंकित हुए हैं।

6-6 cnyr ifjn'; e yIr gkrh ekuoh; lonuk

बदलते युग में असंतोष, घुटन और अनास्था से युवा-वर्ग काफी प्रभावित हुआ। एक ओर बेराजगारी की मार से यह वर्ग टूटने-बिखरने लगा तथा दूसरी ओर इसने सारे पुराने व पारंपरिक मूल्यों के प्रति लापरवाही की मुद्रा अपनाई। धीरे-धीरे इस वर्ग में बेहद उच्छ श्रृंखलता और अराजकता आ गई।

देश के कई प्रांतों में आतंकवादी गतिविधियों में बढ़ोतरी के मद्देनजर मीराजकर की घबराहट और भय स्वाभाविक है। इसलिए कहानी के प्रारंभ में उन्हें आतंक का अहसास होना लाजिमी है। लेखिका ने लिखा है–''मीराजकर को आतंकवादियों की चिंता खाये जा रही थी। किसी ने उनसे कह दिया था कि पंजाब के बब्बर खालसा और जम्मू-कश्मीर के जे.के.एल.एफ. से जुड़े आतंकवादी असम के जंगलों में घुस आये हैं और यहां के स्थानीय गुटों से मिल गये है।'' इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि आतंक के माहौल में मानवीय संवेदना प्रबल रूप से बाधित होती है। क्या आपने कहानी वाचन करते समय इस पर ध्यान दिया कि पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-बहन के बीच आत्मीयता एवं सहानुभूति जैसे मानवीय मूल्यों का नितांत अभाव है। संबंधों में प्राणवंतता नहीं है। बूढ़ी यानी माता अपने नौजवान पुत्र के लिए सदा चिंतित दिखाई देती है। सर्वदा अपने पति से लड़ती-झगड़ती रहती है कि उसे ढूंढने क्यों नहीं जाता? उसकी खोज में क्यों नहीं निकलता? वही पुत्र जब घायल दशा में घर आ धमकता है तो माता का ह्रदय मानो विदीर्ण हो उठता है। वह पागलों की तरह चिल्लाते हुए बोली–''ओ मेरे बेटे! मैंने तो तुम्हारे बाप को सौ बार कहा कि जाओ उसे देखो, वह रेल की पटरी की पास होगा। आ बेटे, आ। क्या हुआ तुझे? इस तरह खून क्यों बह रहा है?'' माता की संवेदना का उभार है परंतु बेटा नितांत पाषाण ह्रदय बन चुका है। पिता-पुत्र में भी कोई संवाद नहीं के बराबर है। संवादहीनता की स्थिति में मानवीय संवेदना का क्षरण होगा ही। युवा पीढ़ी के लिए हो सकता है कि संवेदना एक बकवास हो। बदलते परिप्रेक्ष्य में इसका कोई मौद्रिक मूल्य न हो। लेकिन यही एक तत्व है जो मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने में समर्थ हुआ है। यही पहचान है मनष्य की। मानवीय संवेदना के अभाव में मनुष्य जंगली जानवर से भी हिंस्र बन जाता है। तभी तो भाई की नजर बहन पर पड़ते ही बहन की जो हालत होती है, उसका चित्रण लेखिका ने किया है–''एकाएक लड़के की नजर उस लड़की पर पड़ी जो कोने में बैठी भय के मारे कांप रही थी। वह गोली की तरह उस पर टूटा।'' संवेदना का विलोप होता है तो कोई संबंध या नाता-रिश्ता नहीं रह जाता है। लेखिका ने तभी भाई के लिए 'लड़का' और बहन के लिए 'लड़की' सर्वनामों का प्रयोग किया है। अनजान, बेपहचान लोग। ऐसी स्थिति में क्या होगा? थोड़ी देर के लिए कल्पना करेंगे तो वीभत्स वातावरण कल्पित होगा। चारों ओर लोगों की भीड़ लगी होगी लेकिन कहीं एक भी 'मनुष्य' नहीं होगा बकौल रघुवीर सहाय–''लोग लोग लोग चारों तरफ लोग मार तमाम लोग।'' मानवीय संवेदना की विलुप्ति से विकारग्रस्तता उत्पन्न होगी। विकृतियां फलेंगी-फूलेंगी। संयुक्त परिवार के टूटन से मानवीय संबंधों को बड़ा आघात पहुंचा है। नये हालातों में आत्मीय संबंधों का संकुचन हुआ है। यह है हमारी संवेदनहीनता का उदाहरण। इसके फलस्वरूप हम अकेलेपन की त्रासदी को झेल रहे हैं। अजनबीपन का शिकार हो रहे हैं। घुटन और संत्रास भरे जीवन बिताने के लिए लाचार हो रहे हैं। कहानीकार इंदिरा गोस्वामी ने हमारे जीवन की तमाम विसंगतियां की ओर इशारा किया है।

6-7 Hkk"kk-'kyh

सबसे पहले 'एक अविस्मरणीय यात्रा' का जो बिंदु हमारा ध्यानाकर्षण करता है, वह है यात्रावृत्त में लिखी गई यह एक अद्वितीय कहानी है। इंदिरा गोस्वामी का उद्देश्य यहाँ

कहानी कहना नहीं है बल्कि परिस्थितियों में यथार्थ के स्वरूप से रू–ब–रू कराना है तथा विघटित हो रहे संबंधों की ओर पाठकों को सचेत कराना है। फलस्वरूप, कहानी में चरित्रांकन की तुलना में स्थितियों को महत्व दिया गया है। अनावश्यक दुरूह या कठिन भाषा में लिखना इंदिरा गोस्वामी की रचनाधर्मिता के अनुकूल नहीं है। स्थितियों के अनुसार, घटनाक्रम के अनुसार भाषा अपनी गति से प्रवाहित होती पाई जाती है। सहज ढंग से परिचित प्रतीकों और संकेतों का प्रयोग कहानी में मिलता है। भाषा में स्थानीय रंगत है। यूं कह सकते हैं कि स्थानीय शब्दों के प्रयोग से एक सुगंधि फैलती हुई पाई जाती है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने की सामर्थ्य लेखिका में है। इसलिए भले ही कहानी का कलेवर छोटा है लेकिन इसके कई आयाम और परिप्रेक्ष्य कहानी में मौजूद होने के कारण इसकी भाषा-शैली समर्थ प्रतीत होती है। प्रसंगानुसार 'नामघर' का उदाहरण दिया जा सकता है। असम के संदर्भ मे 'नामघर' एक शब्द मात्र नहीं है। यह असमिया का जन-जीवन या संस्कृति का अभिन्न अंग है। महापुरुष शंकरदेव से लेकर आधुनिक असमिया जीवन में प्राणकेंद्र बना हुआ है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संदर्भों मे 'नामघर' का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। सामान्य अर्थ में यह वह स्थान है जहां ईश्वर का भजन-कीर्तन होता है, पवित्र ग्रंथों का वाचन होता है। लेकिन विविध संदर्भों में इसकी महत्ता वैविध्यमयी सिद्ध हुई है। इंदिराजी की भाषा में रिद्म है, संगीत है। पाठकों को बांधे रखने की अपूर्व क्षमता है। काव्यमयी भाषा के साथ-साथ सहज, सरल और अत्यंत संप्रेषणीय भाषा-प्रयोग में लेखिका को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। लेखिका भाषा की कुशल प्रयोक्ता है। वह तत्सम शब्दों के कुशल प्रयोग में अत्यंत सफल है। हाँ, उसने तद्भव तथा बोलचाल की शब्दावली से भी कोई परहेज नहीं किया है। पुनः अंग्रेजी शब्दों का भी प्रसंगानुसार खूब प्रयोग हुआ है। इससे कहानी में जीवंतता आती है, विश्वसनीयता बनी रहती है, स्वाभाविक प्रतीत होती है।

लेखिका ने प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण असम का वर्णन ही नहीं किया है बल्कि उसका मनोरम चित्रण किया है। उदाहरण के तौर पर निम्न अनुच्छेद को ध्यानपूर्वक पढ़ने के उपरांत आपको इंदिरा गोस्वामी की भाषा-शैली का परिचय मिल जाएगा–"धान के खेत अपने पूरे यौवन में थे। उनका सुनहलापन सोने को मात दे रहा था। कहीं–कहीं वे बड़े विनम्र भी दिखते थे, जैसे कि बोद्धों के गेरुए चीवर से ढके हों या अंधेरे को बांहों में सिमटकर छिप जाना चाहते हों।" यहां लेखिका की भाषा काव्यमयी है। अलंकृत है परिस्थिति के अनुसार है। प्रसंगानुकूल अत्यंत सहज, सरल तथा संप्रेषणीय भाषा का भी प्रयोग हुआ है। लयात्मकता इंदिरा गोस्वामी की भाषा को विशिष्ट पहचान है। अपनी भाषिक संरचना की बदौलत लेखिका काव्य को सही ढंग से संप्रेषित करने में सफल है।

इंदिरा गोस्वामी की भाषा सहज प्रवाही है। यह भाषा व्यापक सामाजिक संपृक्ति से प्राप्त हुई है। असमिया कहानी को नये क्षितिजों से जोड़ने तथा गहराई प्रदान करने की दिशा में इंदिरा गोस्वामी का विशिष्ट योगदान है।

6-8 lkjka'k

आपने 'एक अविस्मरणीय यात्रा' कहानी का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आपके सामने कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त विचारों की एक साफ तस्वीर उभरकर आई होगी। इंदिरा गोस्वामी ने असम के बहाने पूर्वोत्तर भारत या संपूर्ण भारत की ज्वलंत समस्याओं की वास्तविकता को चित्रित किया है। मानवता विरोधी शक्तियों को पहचानकर उनकी क्रूरता, अमानवीयता और वास्तविकता को उजागर किया है।

आपने इस ओर भी ध्यान दिया होगा कि बाजारवादी व्यवस्था में मानवीय संवेदना किस हद तक लुप्त होती जा रही है। आज मानवीय संवेदना पर ही सर्वाधिक प्रहार हो रहा है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के द्वन्द्व और संघर्ष को भी आपने इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट कर लिया होगा। मूल्य संकट से प्रभावित हो रहा है जन-जीवन। निर्माण नहीं विध्वंस को लक्ष्य मानकर चलने वाले स्वयं तो गुमराह हो रहे हैं, दूसरों को भी पथभ्रष्ट कर रहे हैं। संवेदनशून्यता और अमानवीयता के चलते संबंधों में जो विघटन हो रहा है, इस पर भी लेखिका की चिंता प्रकट हुई है। एक ओर मानव-प्रेम है तो दूसरी ओर मारक अस्त्रो से लगाव हैं। ऐसी स्थिति में मानव-जाति के सामने बड़ी चुनौती पेश होती है। लगातार टूटते जा रहे मूल्यों, संयुक्त परिवारों से उत्पन्न विडंबनाओं और विसंगतियों का भी आलोच्य कहानी में विवेचन हुआ है। अपने समय व देश के प्रति अत्यंत सजग लेखिका इंदिरा गोस्वामी की इस कहानी में पराजयबोध से ग्रसित मनुष्य को विजय की ओर उन्मुख किया गया है। उसे संघर्ष शीलता की ओर प्रेरित किया गया है। अनास्था नहीं आस्था, निराशा नहीं आशा, घृणा नहीं प्रेम के मूल्यों को लेखिका ने सर्वाधिक महत्व दिया है। हिंसा को नकारा गया है। अहिंसा के प्रति आग्रह प्रदर्शित हुआ है। इस प्रकार से 'एक अविस्मरणीय यात्रा' भारतीय साहित्य की एक अविस्मरणीय कहानी है।

6-9 vH;kl

1) असमिया कहानी के विकास में इंदिरा गोस्वामी के योगदान पर विचार कीजिए।

2) पारिवारिक संबंध के बदलते स्वरूप को 'एक अविस्मरणीय यात्रा' के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

3) 'एक अविस्मरणीय यात्रा' कहानी के आधार पर आतंकवाद के दुष्प्रभावों की चर्चा कीजिए।

4) 'एक अविस्मरणीय यात्रा' की मूल संवेदना के बारे में अपना मत विस्तार से लिखिए।

5) अतीत और वर्तमान के द्वन्द्व तथा संघर्ष को 'एक अविस्मरणीय यात्रा' के संदर्भ में विश्लेषित कीजिए।

bdkbl 7 c?kbl % fo'ys"k.k vkj eY;kdu

bdkbl dh :ij[kk

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 लेखक का परिचय

7.3 ओड़िया कहानी जगत में चित्रित आदिवासी जीवन

7.4 आदिवासी जीवन और गोपीनाथ महंति का कथा-साहित्य

7.5 आदिवासी जन-जीवन की झांकियां : संदर्भ 'बघेई'

 7.5.1 धार्मिक जीवन

 7.5.2 सामाजिक जीवन

7.6 'बघेई' कहानी की प्रतीकात्मकता

7.7 भाषा-शैली का स्वरूप

7.8 सारांश

7.9 अभ्यास

7-0 mÌ';

इस इकाई में आप ओड़िया कहानी के एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में गोपीनाथ महंति के कथा साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। महंति जी की एक उल्लेखनीय कहानी 'बघेई' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- ओड़िया कहानी साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- आदिवासी जन-जीवन के विविध परिप्रेक्ष्यों को जान सकेंगे/सकेंगी।
- 'बघेई' कहानी के माध्यम से आदिवासी एवं जन-जातियों की जीवन शैली को गहराई से समझ सकेंगे/सकेंगी।
- 'बघेई' कहानी की प्रतीकात्मकता के बहाने पाठ-बोध का विवेचन कर सकेंगे/सकेंगी।
- गोपीनाथ महंति की भाषा-शैली के स्वरूप का परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

7-1 iLrkouk

ओड़िया साहित्य को मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर विकसित करने वालों में फकीरमोहन सेनापति का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। फकीरमोहन ने भाषा-आंदोलन का नेतृत्व प्रदान किया था। ओड़िया भाषा स्वातंत्र्य और अस्मिता को बचाये रखने में सफलता हासिल की। ओड़िया की सर्वप्रथम कहानी 'रेवती' (1898) लिखी जिसमें सामाजिक अंधविश्वास, कुसंस्कार, दकियानुसी विचार, जर्जर परंपरा का विरोध है। इसके प्रति विद्रोह है। नारी-शिक्षा के प्रति प्रबल आग्रह है। फकीरमोहन ने बमुश्किल पचीस कहानियां लिखी थीं, लेकिन उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से ओड़िया कथा जगत् के समक्ष एक मानदंड प्रस्तुत किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के सामाजिक जीवन

के सच्चे चितेरे हैं फकीरमोहन। सामाजिक अन्याय, अत्याचार, आर्थिक शोषण के विरोध में फकीरमोहन ने अपनी कलम चलाई है। इस दौरान ओड़िया के राजनीतिक परिवर्तन, अंग्रेजों की प्रशासनिक व्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार, नव्य शिक्षित समाज का उद्भव और उसकी विसंगतियां, नारी शिक्षा के प्रति उदासीनता, नारी की असहायता, बाल विवाह, दहेज प्रथा। ओरिया का आर्थिक संकट, पारंपरिक जमींदारों व साहूकारों के स्थान पर नये शोषक-वर्ग का आविर्भाव आदि को फकीरमोहन तथा उनके समकालीन रचनाकारों—चंद्रशेखर नंद, दयानिधि मिश्र, दिव्यसिंह पाणिग्राही आदि—ने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस कला में फकीरमोहन उज्जवल नक्षत्र नहीं बल्कि तेजोद्दीप्त सूर्य हैं। 'पेटेंट मेडिसीन', 'गारूडी मंत्र', 'धूलिया बाबा', 'पुनर्मूशिकोभव', 'अधर्म वित्त', 'सभ्य जमींदार', 'डाकमुंशी' आदि फकीरमोहन की ही नहीं संपूर्ण ओड़िया कहानी की अमूल्य रचनाएं हैं। इन कहानियों में तत्कालीन ओड़िया के सामाजिक जीवन का समग्ररूप अंकित हुआ है। दलित, पीड़ित, अवहेलित एवं शोषित समाज के प्रति फकीरमोहन की संवेदना मार्मिक रूप में प्रकट हुई है। फकीरमोहन की मृत्यु 1918 में हुई। इसके बाद संपूर्ण भारत में महात्मा गांधी का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रभाव से ओड़िया तथा उसके रचनाकार भी प्रभावित हुए। समाज-संस्कार आंदोलन, विधवा विवाह का प्रवर्तन, अछूतोद्धार, मदिरा-पान तथा अन्य नशीले पदार्थों का त्याग, नारी शिक्षा का प्रचार, राजनीति में नारी की भागीदारी, स्वराज हेतु सत्याग्रह आंदोलन आदि को आधार मानकर कांतकवि लक्ष्मीकांत महापात्र, बांकनिधि पट्टनायक, कालिंदीचरण पाणिग्राही, भगवतीचरण पाणिग्राही, अनंत प्रसाद पंडा, अनंत पट्टनायक, राजकिशोर राय, राजकिशोर पट्टनायक, गोदावरीश महापात्र, सच्चिदानंद राउतराय, नित्यानंद महापात्र, लक्ष्मीधर नायक, रामप्रसाद सिंह, रधुनाथ दास जैसे कहानीकारों ने भारतीय मुक्ति संग्राम के दौरान महत्वपूर्ण कहानियां लिखीं। इनकी कहानियों से ओड़िया कथा-साहित्य समृद्ध हुआ तथा उसका बहुमुखी विकास हुआ। इन रचनाकारों ने बदलते समय के सच को परिवर्तित परिस्थितियों की धड़कनों को भी अपनी रचनाओं में स्थानित करने का प्रयास किया है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिदृश्यों का अंकन किया है। गांव तथा शहर दोनों की सच्चाई को इन रचनाकारों ने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया के समाज व राजनीति में तमाम द्वन्द्व व संघर्ष दिखाई पड़ते हैं। निराशा से जर्जर हो उठा उसका सामाजिक जीवन, ग्रामीण तथा शहरी लोगों में असहायता की भावना भरने लगी। उसका करुण स्वर सुनाई पड़ा। कथाकारों ने भी उस करुण स्वर को सुना और रूपायित करने का प्रयास किया है अपने रचना-संसार में। ध्यान दें कि यह असहायता केवल जीने की समस्या को लेकर नहीं है, रोटी की समस्या को लेकर भी नहीं है। पेट की भूख है तो सेक्स की भी। अपने आदर्शों के अधोपतन को लेकर असहायता है तो अपने खंडित व्यक्तित्व की यंत्रणा से उत्पन्न असहायता विद्यमान है। इस दौर के रचनाकारों को फ्रायड के मनोवैज्ञानिक दर्शन ने अपनी ओर खींचा है तो मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने भी प्रभावित किया है। बीच-बीच में काम्यू, काफ्का व सार्त्र के अस्तित्ववादी विचारों ने भी आकर्शित किया है मनुष्य की बाह्य तथा अंतः दोनों स्थितियों को लेकर कहानियां लिखी गईं तो अखिल विश्व मानव-सत्ता के रूप में मनुष्य को चित्रित करते हुए कथा-संसार का निर्माण हुआ। यह मनुष्य किसी भौगोलिक सीमा में आबद्ध न रहा। अंतरराष्ट्रीय सीमा को पार करते हुए पूरी दुनिया को कुटुंब मानकर चलने वाले मनुष्य का भी चित्रण ओड़िया कहानी में पाया जाता है। सुरेंद्र महंति, मनोज दास, किशोरी चरण दास, अखिलमोहन पट्टनायक, वामचरण मित्र, शांतनुकुमार आचार्य, कृष्णप्रसाद मिश्र, वीणापाणि महंति, विभूति पट्टनयाक, रत्नाकर चइनी प्रफुल्ल कुमार त्रिपाठी, निमाईं चरण पट्टनायक, अच्युतानंद पति, हरप्रसाद दास, फनी महंति, प्रसन्न कुमार पाटषाणी, हरिहरदास, पूर्णानंद दास, शकुंतला पंडा, प्रतिभा राय, प्रतिभा शतपथी, सरीखे सैकड़ों कहानीकरों ने ओड़िया कथा-साहित्य को नई गति दी है। नया स्वर

प्रदान किया है। स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया कथा जगत् में एक प्रसिद्ध नाम है गोपीनाथ महंति। यद्यपि स्वतंत्रता के पूर्व वे रचना की दुनिया में सक्रिय थे तथापि उन्हें कहानीकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद ही। आपको यहां बताना अनुचित न होगा कि गोपीनाथ महंति ने कथा-जगत् में अपनी राह स्वयं निर्मित की है। भाव की दृष्टि से उन्होंने फकीरमोहन की कथा-परंपरा को चुना, परंतु लगभग अछूते विषयों का चयन किया। मानवतावाद को केंद्र में रखकर उसका उद्घाटन किया है। यह बात अलग है कि ओड़िया साहित्य में गोपीनाथ बहुप्रसिद्ध, बहुश्रुत और बहुचर्चित उपन्यासकार ही रह गये। उनकी कहानियों की ओर आलोचकों की गंभीर दृष्टि न पहुंच पाई है। बहरहाल, इस इकाई में हम गोपीनाथ बाबू की 'बघेई' कहानी का पाठ करेंगे। इसके माध्यम से आप जान सकेंगे कि गोपीनाथ महंति कहानी सृजन में भी अद्वितीय हैं। उपन्यास लेखन में तो थे ही।

आप यह सोच रहे होंगे कि 'बघेई' क्या होता है। 'बाघ' शब्द से बघेई बना है। बाघ एक हिंस्र तथा भयानक जानवर होता है। बाघ का भय, आतंक और उसके प्रति जो मनोग्रंथि, उसकी ग्रस्तता होती है उसे 'बघेई' कहते हैं। यह ओड़िया की लोकभाषा का एक शब्द है। आइए, अब हम गोपीनाथ महंति का सामान्य परिचय प्राप्त कर लें।

7-2 ys[kd dk ifjp;

कथाकार गोपीनाथ महंति (1914–1991) की सृजन-यात्रा शुरू हुई थी निबंध लेखन से। 1935 से 37 के बीच उन्होंने 16 निबंध 'सहकार' नामक प्रसिद्ध पत्रिका में प्रकाशित किये थे। इनसे उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली। उनकी पहली प्रकाशित कहानी थी 'डँ'। प्रसिद्ध कथाकार भगवतीचरण पाणिग्राही द्वारा संपादित 'आधुनिक' पत्रिका में 1936 के आस-पास उक्त कहानी छपी थी। 1935–36 से कहानी-लेखन शुरू हुआ था लेकिन उनका पहला कहानी संकलन 1951 में 'घासर फूल' (घास का फूल) प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष गोपीबाबू का दूसरा कहानी-संग्रह 'पोड़ा-कपाल' (फूटा कपार) भी आया। इन दोनों संग्रहों के साथ लेखक के कुल 14 संग्रह प्रकाशित हुए। अन्य बारह कहानी-संग्रहों के नाम हैं 'नववधू' (1952) 'छाइ आलुअ' (परछाई उजाला)–1956, 'रणहिंदोल' (1963),'गुप्तगंगा' (1967), नाँ मने नाहिं (नाम याद नहीं)–1968, 'उडंता खई' (उड़ती लाई)–1971, 'मनर निआँ' (दिल की आग)–1979, 'सात पांच' (1989),

शराय्या (1992), 'छाइ आलुअ', परिवर्धित संस्करण (1992), 'तिनिकाल' (1993), बघेई (1995), गोपीनाथ बाबू के निधन 1999 के बाद चार संग्रह प्रकाशित हुए थे। उपर्युक्त संग्रहों के अलावा लेखक की अनेक कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं। कुछ अप्रकाशित भी थीं। जो भी हो, गोपीनाथ बाबू ने कुल दो सौ कहानियां लिखी हैं। ओड़िया पाठक बस दो कहानियों के बारे में चर्चा करते हैं। 'चींटियां' और 'घर', अधिक हुआ तो 'षरषय्या'। ओड़िया तथा पूरे भारत में इनकी स्वीकृति उपन्यासकार के रूप में है। उनके उपन्यासों की अत्यधिक प्रशंसा हुई है। उपन्यास 'माटिमटाल' हेतु उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। 1938 से 64 के बीच उन्होंने 14 उपन्यास लिखें–'परजा'(1946), 'हरिजन'(1948), 'अमृतर संतान'(अमृत की संतान 1949), 'दुइपत्र' (1955), 'शिवभाई' (1955), 'अपहंच'(पहुंच के बाहर,1961), 'राहुर छाया' (राहु की छाया), 'सपनमाटि' (1948), दानापानी (1955), 'माटिमटाल' (1964), 'लय विलय' (1961) आदि।

1940 में गोपीनाथ महंति को ओड़िया प्रशासनिक सेवा के तहत जिला अधिकारी के रूप में नियुक्ति मिली। एतद्पूर्व उन्होंने व्यंग्य, आलोचना एवं कविता प्रकाशित किया था। उपन्यास लेखन में उन्होंने 26 वर्ष व्यतीत किये तो कहानी-लेखन में लगभग आधी शताब्दी तक

साहित्य साधना की। जीवन का अधिकांश समय उन्होंने ओड़िया के आदिवासी इलाके कोरापुट में बिताया। उपेक्षित एवं अवहेलित आदिवासियों के प्रत्यक्ष संबंध में आये। उन्हें नजदीक से देखा, जाना, समझा और महसूस किया उनके साथ रहे, उठे बैठे। अशिक्षित आदिवासी घने जंगल में, पहाड़ की गुफाओं में, झरना के किनारे या फिर झोपड़ियों में रहा करते थे। गोपीनाथ ने उनकी बोली-बानी भी सिखी। उन्होंने देखा कि ये वनवासी न दांत मांजना जानते हैं और न साफ-सुथरे ढंग से रहना जानते हैं। कंदमूल या जंगली फल खाकर जीवित रहते हैं। लेकिन इनका हृदय मानवीय गुणों से भरपूर रहता है। काले-मटमैले शरीर के अंदर एक उजला व साफ-सुथरा हृदय था जिसे गोपीनाथ बाबू ने भली-भांति समझ लिया था। कहानीकार ने उस निष्कपट हृदय की अभिव्यक्ति की है।

7-3 vkfM+;k dgkuh txr esa fpf=r vkfnoklh thou

आप जानते हैं कि ओड़िया कहानी अपने प्रारंभिक काल से ही समाज के निम्न वर्ग और पिछड़ी जातियों के प्रति सहानुभूतिशील और संवेदनशील रही है। आजादी के दिनों तक ओड़िया कहानी में इस वर्ग को काफी महत्व दिया गया। राजा, जमींदार, साहूकार और सरकारी अधिकारी या कर्मचारी इस वर्ग का शोषण करते रहे। निम्न वर्ग और पिछड़ी जातियों में आदिवासी समाज का विशेष स्थान था। परंतु आदिवासी समाज के चित्र ओड़िया की प्रारंभिक कहानी जगत् में नहीं के बराबर हैं। यद्यपि गोपालबल्लभ दास के 'भीमाभूयाँ' (1908) और उमेशचंद्र सरकार के 'केन्दुझर विद्रोह' (1909) उपन्यासों में आदिवासी जीवन की कुछ झांकियां मिल जाती हैं तथापि आदिवासी समाज का अंतःसंघर्ष सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं हो पाया है। ओड़िया के प्रगतिशील कहानीकार की 'जंगली'(1929) में आदिवासी भावर (भील) और भीलकन्या का चित्रण पहली बार हुआ है। इस कहानी में आदिवासी भील का अपनी कन्या के साथ जंगल में रहना, जंगली और भील की प्रेम-कहानी, जंगली के तीर से भील की मृत्यु आदि प्रसंगों का चित्रण है। यद्यपि कहानी के तत्वों के आधार पर 'जंगली' उतना सफल नहीं है फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्व है। भगवती बाबू की एक और कहानी है 'शिकार' (1936)। आदिवासी नायक घिनुआ का स्वाभिमान और उसकी सहजता, निष्कपटता आदि की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। घिनुआ जंगल में बाघ का शिकार करता है। उसकी दृष्टि में बाघ भयानक होता है। वह बाघ का कटा हुआ सिर अंग्रेज साहब के सामने रखकर ईनाम पाया करता था। घिनुआ के लिए शोषण अन्याय है। दूसरों की बहू-बेटियों पर अत्याचार करने वाले गोविंद सरदार के वह बाघ से भी खतरनाक मानकर उसकी हत्या कर देता है। पुलिस साहब को वह सब कुछ साफ-साफ बता देता है। वह मिथ्या बोलेगा नहीं क्योंकि झूठ पाप होता है। उसे यह कहाँ पता कि सत्य कथन से मृत्युदंड मिल सकता है। फांसी होती है। लेकिन वह नहीं जानता कि फांसी होती भी क्या है? शायद कोई बड़ा इनाम होगा, ऐसा सोच रहा था। फांसी के पहले उसका चेहरा काले कपड़े से ढंक दिया जाता है तो वह बड़े इनाम पाने की खुशी के सपने देखता है, ढेर सारे सपने। एक अत्यंत मार्मिक कहानी है 'शिकारी'। इसके बाद आदिवासी जन-जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण गोपीनाथ महंति ने किया है। इसकी चर्चा आगे की जाएगी।

प्रसिद्ध कथाकार काह्नुचरण महंति की 'प्रान्जू' और 'जो हुक्म' कहानियों में सीधी-सादी, सहज, सरल, निष्कपट आदिवासी जन-जीवन का सफल रूपायन हुआ है। जलंधर देव की 'गौरी ओ काह्नु' में आदिवासी भूयां संप्रदाय के प्रतिवाद और स्वाभिमान के चित्र अंकित हैं। जाति-भेद की संकीर्णता के दुष्परिणामों को भी दर्शाया गया है। प्राणबंधुकर ने अनेक महत्वपूर्ण कहानियां लिखी हैं। आदिवासी चरित्र की खूबियों को रेखांकित करती है कहानी 'हीरो' आदिवासी युवक की संघर्षशीलता और अन्याय तथा शोषण के तीव्र विरोध को इस

कहानी में सफलता के साथ चित्रित किया गया है। असम की सड़कों पर काम करने वाला यह युवक किसी मिल मालिक के शोषण का विरोध करता है। सफेदपोश हाकिमों से गरीबों पर ढाये जा रहे शोषण व अत्याचार से वह अत्यंत दुःखी होता है। सभ्य समाज में शोषण और भोगवादिता पर करारा व्यंग्य इस कहानी की सबसे बड़ी खूबी है। वामाचरण मित्र की 'अपराधी' बिल्कुल दूसरे ढंग की कहानी है। आदिवासी युवकों की चारित्रिक विशेषताओं को आधार बनाकर हाकिमों की क्रूरता का चित्रण किया गया है। टुणुका परजा और हरिडंब चरित्रों के माध्यम से कहानीकार ने कानून की सीमाबद्धता को भी प्रदर्शित किया है। दुर्गामाधव मिश्र की एक अविस्मरणीय कहानी है 'चंद्राहत'। ओड़िया के पूर्वी इलाके याजपुर से सीमांत कोरापुट में ब्लॉक डेवलेपमेंट अफसर के रूप में मन्मथबाबू पहुंचकर आदिवासियों के संगीत, नृत्य, महुए की शराब आदि में तल्लीन हो जाते हैं। डिसारी (पुजारी) की निष्पाप मुस्कान से वे बंध जाते हैं। डिसारी की अपहृत बेटी कुसुमी के उद्धार हेतु मन्मथबाबू जी-जान लड़ा देते हैं। इसमें उन्हें सफलता हासिल होती है। डिसारी और कुसुमी के मिलन से उन्हें बहुत शांति मिलती है। दुर्गाबाबू की 'बुदा किरिसानी' शीर्षक कहानी में आदिवासी समाज के चैती पर्व, नृत्य, संगीत आदि का चित्रण है। बुदा किरिसानी और लच्छमी की प्रेम-कहानी का भी मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रवीण कथाकार सातकड़ि होता ने 'किरिबुरूर रजा'(किरिबुर का राजा)कहानी लिखकर काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। अत्यंत परिश्रमी किरिबुरू का युवक बैरागी आदिवासी युवती फुलमणि के साथ सुखी दांपत्य जीवन व्यतीत करता है। लेकिन वह अक्सर पहाड़ की ओर ताकते रहता है। तथाकथित सभ्य मनुष्य और सुविधाभोगी नेताओं ने मजदूरों को भड़का कर हड़ताल कराना चाहा, मशीनों को नष्ट करने के लिए उकसाया। विस्फोटकों से मशीनें उड़ा देने के लिए कहा। वैरागी ने इसका विरोध करते हुए विस्फोटक हटा दिये लेकिन इससे उसकी मृत्यु हो गई। आदिवासी युवक का विरोध और विद्रोह जाहिर होता है तो उसका कर्त्तव्यबोध भी।

कथाकार विपिनविहारी मिश्र ने आदिवासी समाज की विशेषताओं को उद्घाटित किया है। उन्होंने परंपरा के प्रति सम्मान, सादगी, निर्भयता और भाईचारा जैसे वैशिष्ट्य का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। परजा, गद्बा, कोंध, सउरा, गोंड, कोया, लांजिया, भावर, जुआंग, संथाल, लोधा आदि विभिन्न आदिवासियों की रीति-नीति, चाल-चलन वेश-भूषा, खान-पान आदि को उन्होंने 'चइतिमत्ता–, 'जगार हस', चक्रव्यूह', 'चंपाफूल', 'परमा कुजूर', 'बंडा', 'महादेई', 'दूर पथिक', 'जमानबंदी', जैसे दर्जनों कहानियों में अभिव्यक्त किया है।

सुरेंद्र महंति की 'खदान' में आदिवासी समाज पर सभ्य समाज का शोषण चित्रित है। अपने हृदय से भी अधिक प्यारे पहाड़ से उन्हें विस्थापित होना पड़ता है। खदान मालिकों के अत्याचार और चरम शोषण का शिकार होता है आदिवासी समाज। इसे आधार बनाकर लेखक ने 'खदान' कहानी का ताना-बाना बुना है। इस संदर्भ मे उज्ज्वल पाढ़ी की 'छाइ आलुअर नाच' (छाया-प्रकाश का नाच), गुरुप्रसाद महांति की 'रक्तमंदार', उत्तमकुमार प्रधान की 'नचिकेतार हाथ'(नचिकेता का हाथ) 'ठेलको, उमाशंकर पंडा की 'दारिंगबाड़ी की 'फूलमति', विभूति पट्टनायक की 'आखि' (आंख), गौरमोहन पट्टनायक की 'कुल्हाड़ी', रामचंद्र बेहेरा की 'शिकार' वह 'सूर्योदय का सम्मान' आदि कहानियों से ओड़िया आदिवासी कथा-साहित्य समृद्ध हुआ है। अब हम गोपीबाबू की इस विषय से संबंधित कहानियों तथा उपन्यासों के स्वरूप पर विचार करेंगे।

7-4 vkfnoklh thou vkj xksihukFk egafr dk dFkk-lkfgR;

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में गोपीनाथ महंति का सृजन जगत् अत्यंत गतिशील होता है। अब तक के सृजन में उनके जीवनानुभव, सामाजिक विषमता, द्वंद्व, आर्थिक विषमता, वर्ग-संघर्ष आदि मुखर होते पाये जाते हैं। पश्चिम ओड़िया के कोरापुट जिले में अपना नौकरी जीवन शुरू करते ही वे अवहेलित आदिवासियों के प्रत्यक्ष संपर्क में आये। आजादी के संघर्ष-काल में गांधीजी के आदर्श और विचारों का पूरे भारत में काफी प्रभाव था। फकीरमोहन सेनापति का मौन सारस्वत संघर्ष गोपीनाथ बाबू को विरासत में प्राप्त था। उन्होंने टेलर, गिब्सन आदि के नृतात्विक विश्लेषण का काफी चिंतन-मनन किया था। समाज शोषण, अत्याचार और प्रपीड़न से भरापूरा था। मासूम आदिवासी युवतियों पर साहूकार, कंट्राक्टर, महाजन आदि का पाशविक अत्याचार जारी था। आदिवासी पुरूष का श्रम शोषण तो युवतियों का शारीरिक शोषण करना 'सभ्य समाज' अपना अधिकार मान बैठा था। इससे कथाकार की अंतरात्मा कराह उठती है। उन्होंने आदिवासियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की गहराई को, स्पंदन को महसूस किया था। उन्होंने आदिवासियों की जीवन-यंत्रणा के कारणों को अन्वेशित किया और पाया कि आदिवासियों की सहजता और धार्मिक विश्वास उनके कष्ट के मूल कारण हैं।

गोपीनाथ महंति ने अपने अनेक उपन्यासों में परजा, कोंध, भील, गद्बा जनजातियों के संकट, संघर्ष और समस्याओं का सविस्तार चित्रण किया है। 'प्रकृति के पुत्र' आदिवासी की सोच अपनी जाति या भौगोलिक सीमा तक आवद्ध नहीं है। 'अमृतर संतान' (अमृत की संतान) के प्रथम परिच्छेद में भाव-संस्कार प्रथा और बलि पूजा आदि के संदर्भ में रचनाकार ने उद्धृत किया है—''

हाजि हिलारेटु, कडानि हिलारेटु आबारे मण्बे
बालारे मण्बे निंगे पेनु बोगु हिहि मंजाइ
राजी उजो आताइ देश उजो आताइ तिज्जिम जाने।''

(अर्थात् किसी का विनाश न हो, बाघ न रहे, सभी सुखी रहें, शांतिपूर्वक रहें। तुम्हें हम प्रसाद दे रहे हैं। तुम भोग ग्रहण करो तो राज्य में उज्ज्वल होगा, देश में उज्ज्वल होगा।) बलि प्रथा के मूल में समुदाय की मंगल कामना है न कि व्यक्ति विशेष की। देवता प्रसन्न रहें तो पूरे समाज और देश का मंगल होगा, ऐसा आदिवासी मानते हैं।

गोपीनाथ बाबू ने 'परजा' शीर्षक उपन्यास में सुकृजानि के परिवार के बहाने अवहेलित आदिवासी समाज के विश्वास और परंपरा को उज्जीवित किया है। जिलि व बिलि सुकृजानि की बेटियां हैं तो मांडिया और टिक्रा दोनों बेटे हैं। वन अधिकारी की जिलि पर पाश्विक दृष्टि है तो साहूकार की सुकृ की जमीन पर ललचाई हुई दृष्टि। इसमें किसान के मजदूर में तब्दील हो जाने की करूण गाथा है। सुकृजानि के परिवार को जिस शोषण, व्यभिचार, निराशा और मुसीबतों से होते हुए जीवन गुजारना पड़ता है वह आदिवासी समाज की निष्पेषित और अत्याचारित दुखद गाथा है। मानव-प्रकृति और मनुष्य की आस्था में विश्वास रखनेवाले आदिवासी जीवन की शोचनीय दशा को 'परजा', जैसे उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। बेगारी प्रथा हो या अपमान की विष ज्वाला का पान करना हमेशा इन मासूम वनवासियों को शोषण का शिकार होना पड़ता है।

गोपीनाथ महंति की कहानियों में 'पालभूत', विस्मृति', 'यज्ञ आहुति' 'पिम्पुड़ी (चींटी) आदि का सर्वोपरि महत्व है। 'पालभूत' शीर्षक कहानी में लेखक ने आदिवासी जीवनशैली का चित्रण किया है। इसमें यथातथ्य चित्रण किया गया है। आदिवासी समाज अपनी अच्छाई-

बुराई के साथ इसमें जीवंत हो उठा है। सभ्य समाज के शोषण और अत्याचार को आदिवासी संगीत और नृत्य के ताल-छंद में भुला देने का प्रयास करते हैं। जीवन के विष को नीलकंठ बनकर पी जाना चाहते हैं। 'विस्मृति' शीर्षक कहानी में लेखक ने आदिवासी जन-जीवन के इस रूप से परिचित कराया है। जिस भगवान की वे पूजा करते हैं वह बार-बार वज्रपात करता है और उनके आत्मीय जनों को उनसे अलग कर देता है। फिर भी आदिवासी प्रकृति को अपना सबकुछ मानकर चलते हैं। 'यज्ञ आहुति' शीर्षक कहानी में आदिवासियों के हाट-बाजार के साथ जंगल के चित्र उकेरे गये हैं। आजादी के बाद भी उन पर सभ्य मानव के जारी अत्याचारों का वर्णन हुआ है। 'पिम्पुड़ी' यानी 'चींटी' कहानी में लेखक की मानवीय संवेदना का व्यापक रूप परिलक्षित होता है। कोंध जाति के वनवासियों का जीवन-चित्रण इस कहानी की मूल संवेदना है। लेखक की कहानियों पर तुलनात्मक ढंग से नजर डाली जाए तो इतना निस्संदेह कहा जा सकता है कि एक ओर दया, करुणा, मैत्री, सादगी, मासूमियत, सत्य निष्ठा, धार्मिक विश्वास है तो दूसरी ओर शोषण, उत्पीड़न, छल-कपट, दंभ, अत्याचार आदि के जीवंत चित्रण परिलक्षित होते हैं।

गोपीनाथ महंति के कथा-साहित्य में आदिवासी जीवन के जो सामान्य चित्र मिलते हैं उनका उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है:

विपदाग्रस्त की सहायता करना आदिवासी अपना धर्म समझते हैं। जहां तक हो सके निष्काम सेवा करते हैं। कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति उनसे थोड़ा भी प्रेम भाव रखता है तो वे उसके प्रति पूर्णतया समर्पित हो जाते हैं। यदि कोई उनसे छलावा करता है और आदिवासियों को इसका पता चले तो वे वन्य प्राणी से भी अधिक भयानक हो उठते हैं। वे अखंड स्नेह, ममता और मानवता के पुजारी हैं। बादल, बाघ और वन्य अधिकारी से वे काफी भयभीत होते हैं। पुलिस से भी वे डरे सहमे रहते हैं। देवता व ठकुराइन के प्रति आस्थाभाव प्रकट करते हैं। ठकुराइन के सामने बलि चढ़ाते हुए वे उद्दाम नृत्य करते हैं। तमाम अंधविश्वासों में डूबे रहते हैं। शिक्षा के प्रकाश से वंचित हैं। अर्थनैतिक विकास के बारे में सोचकर परेशान नहीं होते। कभी वे प्रकृति को अपना लेते हैं तो कभी उससे टकराते भी हैं। लेकिन प्रकृति से उनकी आत्मीयता व सौहार्द्र बने रहते हैं। देवी और देवता के रूप में प्रकृति के विविध रूपों को स्वीकार करते हैं। नगर जीवन की चमक-दमक उन्हें पसंद नहीं है। जंगल के वातावरण में उनका मन रमता है।

नारी के सतीत्व के प्रति उनके मन में सम्मानबोध है। यदि कोई नारी से बुरा बरताव करता है तो भयानक हो जाते हैं। दर्मु (धर्म) और धरती आदिवासियों के लिए जीवन के आधार हैं। संघबद्ध जीवन के प्रति उनके मन में प्रबल आस्था होती है। वे अभाव-असुविधाओं में भले ही जीवन बिताएं लेकिन अपने स्वाभिमान को सदा बनाये रखना नहीं भुलते।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि ओड़िया साहित्य में आदिवासी समाज, जीवन और चरित्र को लेकर कहानी की जो लंबी परंपरा है उसमें गोपीनाथ महंति की कहानियों का विशिष्ट स्थान है। अनुभूति की प्रामाणिकता और आंखों देखी घटनाओं के चलते गोपीनाथ महंति आदिवासी जन जीवन के सफल चितेरे हैं।

7-5 vkfnoklh tu-thou dh >kfd;k % lnHkZ ^c?kbZ'*

इस इकाई में आपने गोपीनाथ महंति के कथा-साहित्य में आदिवासी जन-जीवन के विविध संदर्भों को सूत्र रूप में पढ़ा है। अब हम आपके पाठ्यक्रम में संकलित 'बघेई' कहानी के आधार पर आदिवासी जन-जीवन के निम्नलिखित प्रसंगों की चर्चा करेंगे–

1) धार्मिक जीवन

2) सामाजिक जीवन

7-5-1 /kkfeZd thou

ओड़िया के कोरापुट जिले में रहने वाले आदिवासी जनजीवन की धार्मिक मान्यताओं के बारे में कहानीकार ने प्रसंगानुकूल चित्रण किया है। इस समाज में ज्ञानी और पुजारी का प्रभाव स्पष्टतः पाया जाता है। ठकुराइन, मंत्र, जड़ी बूटी, झाड़-फूँक आदि में इनकी प्रबल आस्था है। ठकुराइन के उद्देश्य में आदिवासी कभी मुर्गा तो कभी बकरा या फिर कभी भैंस की बलि चढ़ाते हैं। उनकी मान्यता है कि इस बलि प्रथा से ठकुराइन प्रसन्न होती हैं। उनकी प्रसन्नता से ही अच्छी फसल होती है, प्राकृतिक विपदाओं से ठकुराइन रक्षा करती है। बीमारियों से बचाती हैं। सबसे बड़ी बात है कि बाघ के प्रकोप से पूरे गांव तथा इलाके की हिफाजत करती है।

'बघेई' कहानी में धनू पंडित का उल्लेख मिलता है। पूरे आदिवासी अंचल में उसकी विशेष प्रतिष्ठा है। वह पंडित जरूर है लेकिन ब्राह्मण नहीं। ठकुराइन की पूजा के लिए कोई व्यक्ति चाहिए। अतः आदिवासियों में से सही। चूंकि वह पुजारी है, इसलिए सभी उसकी बातों का सम्मान करते हैं। आदिवासी सोचते हैं कि ठकुराइन उसके माध्यम से काम करवाती है मुखिया धूर्व सिंह के साथ उसकी अच्छी खासी मित्रता भी है। लेडेंग गांव के आदिवासियों में मूर्तिपूजा का प्रचलन था। पूजा-पद्धति और धार्मिक विचार पर प्रकाश डालते हुए कहानीकार ने लिखा है—''ब्राह्मणी देवी और उनके नीचे के अनेक देवी-देवताओं को पूरे सालभर सूअरों बकरों, मुर्गों और कबूतरों की बलि दी जाती है। इस पुण्यभूमि में जितनी निष्ठा से लोग धर्म का पालन करते हैं, दूसरी जगहों पर वैसा उग्र धर्म-भाव देखने को नहीं मिलता। लोग लंबे-लंबे बाल रखते हैं, उपवास करते हैं, कई जटाधारी बन जाते हैं, जटा में बरगद के दूध की मालिश करते हैं, पेट के बल या घुटनों या लंबे लेटकर घिसट-घिसट कर देवथान की यात्रा करते हैं, पूरे बरसभर कितनी सारी यात्राएं! जीभ या पीठ को लोहे के कांटे से छेदकर की जाने वाली यात्रा, अपने को बिच्छू का डंक लगवाकर की जाने वाली यात्रा और आग पर चलने की यात्रा भी। गाने-बजाने की धूमधाम से तो पूरा अंचल गूंजता रहता है। लोग इतना धरम-करम करते हैं, इसी वजह से तो देवियां खुश रहती हैं, उनके डर से बाघ घुस नहीं पाता।''

उपर्युक्त कथन से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि आदिवासी समाज में अंधविश्वास है। धार्मिक बाह्याचार है। पुरानी धर्म-भावना है। सड़ी गली मान्यताएं हैं। शरीर साधना, तंत्र-मंत्र का प्रभाव भी स्पष्ट है। कहानीकार ने कुछ छिपाया नहीं है। उसने जो देखा उसका चित्रण किया। इससे पाठक आदिवासियों के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं दिखाते बल्कि यह सोचते हैं कि ऐसी जर्जर मान्यता के लिए कौन-सा कारण जिम्मेदार है? अशिक्षा ही इसका मूल कारण है। फिर पाठक यह भी सोचने लगता है कि ये आदिवासी कितने भोले-भाले हैं, सीधे-सादे और निर्मल, निष्पाप हृदय के हैं।

ब्राह्मणी देवी की पूजा के दिन गांव का मुखिया और पुजारी उपवास करते हैं। किसी भी बड़े काम, जैसे बाघ मारने का अभियान करने के पहले यह प्रथा चालू थी। ब्राह्मणी देवी के सामने सभी इकट्ठे होते। पूरी योजना बताई जाती है। आदिवासी समझते कि देवी की आज्ञा को मुखिया या पुजारी सुना रहे हैं।

बाघ को मारने के अभियान में धनू पंडित की दाईं जांघ को बरहा ने चीर डाला। मुसीबत के क्षण में आदिवासी भला ब्राह्मणी देवी के अलावा किसका स्मरण करते? देवी के इन

उपासकों ने सोचा और तय भी कर लिया–''जरूर गांव के मुखिया और धनू पंडित ने कोई अन्याय किया था।' यह है आस्था देवी के प्रति आदिवासियों की। मां की इच्छा से सब कुछ होता है। मां की दया से सुख ही नहीं, दुःख भी मिलता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'बघेई' में चित्रित धार्मिक मान्यता आदिवासियों के जीवन-चरित्र के विविध पक्षों को रूपायित करती है। वे सहज हैं, सहजता से किसी बात को स्वीकार कर लेते हैं। कुसंस्कारों से ग्रसित हैं क्योंकि उन्हें नहीं पता कि संस्कार क्या होता है? मूर्तिपूजक हैं क्योंकि परंपरा से मूर्ति पूजा चली आ रही है। सुख हो या दुःख वे निर्मल हृदय से अपनी आत्माभिव्यक्ति देवी के सामने करते हैं उनकी धार्मिक चेतना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह उन्हें ऐक्यबद्ध करती है। संघबद्ध जीवन का महत्व समझाती है। पारस्परिक प्रेम भाव को संवर्धित करती है।

7-5-2 lkekftd thou

'बघेई' कहानी की पृष्ठभूमि में परतंत्र भारत नहीं, स्वतंत्र भारत है। स्वतंत्रता के कई दशकों के पश्चात् आदिवासी समाज की स्थितियाँ जस की तस बनी रही है। उनके रोजमर्रा जीवन में कोई बदलाव नहीं आया। उनमें से कुछ थोड़ा-बहुत पढ़-लिखकर जो नगराभिमुखी होते हैं वे अपनी जड़ से कट जाते हैं। अपना नाम-पता तक बदलकर बाबू बन जाते हैं। अपने आदिवासी भाइयों की शोचनीय स्थिति से उदासीन रहने लगते हैं।

आपने 'बघेई' कहानी पढ़कर यह समझ लिया होगा कि आदिवासियों ने अपनी आर्थिक परेशानियों से कोई आपत्ति नहीं की है। अर्थ के अभाव से वे पीड़ित नहीं पाये जाते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं। उनके पास जो कुछ भी है, उससे वे संतुष्ट हैं। अधिक पाने का लोभ उनमें नहीं है। जो है उससे सदा संतुष्ट रहते हैं। अत्यधिक परिश्रमी होने के नाते उन्हें अपने तथा परिवार के सदस्यों का पेट भरने में असुविधा नहीं होती। साहूकार, महाजन, पुलिस, अधिकारी उनके श्रम का खूब शोषण भी करते हैं। लेकिन जहां तक हो सके वे सर्वसहा बनकर झेलते रहते हैं। कष्ट सहिष्णुता का उत्कृष्ट उदाहरण बनकर वे दूसरों के हित का अधिक ध्यान रखते हैं। अपने को संकट में डालकर भी दूसरों का कुछ भला हो जाये तो इसके लिए वे पीछे रहना पसंद नहीं करते।

'बघेई' में आदिवासी जल, जंगल और जमीन को सर्वोपरि मानते हैं। इन्हें वे अपना जीवन मानते हैं। उनके सपने इन्हीं तीन तत्वों के इर्द-गिर्द घूमते नजर आते हैं। पानी की समस्या से पीड़ित आदिवासियों का मुखिया कहता है–''हमारी इस नदी पर अगर एक बांध बन जाता तो ढेर खेतों की सिंचाई हो सकती है। बड़े-बड़े तालाब, पोखर खुदवा देने पर उसमें पानी रहता। गर्मियों में पीने तक को पानी नहीं मिलता। धान, चावल और हर दिन तीन रुपए कर्ज में मिल जाते तो कितना उपकार होता। क्या करें कि थोड़ी अच्छी फसल हो थोड़ा ज्यादा खाने का मिले, यह बात कौन समझता है। और हमारे किस दादा-परदादा का कौन दादा-परदादा कोई महान योद्धा था, वह सब जानकर क्या हमारा पेट भरेगा?'' उपर्युक्त कथन से आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का अंदाजा तो मिलता ही है, साथ ही उनके सपनों का संबंध नित्य-प्रति की आवश्यकता से है, इसका भी आभास मिलता है। पुनः शासन की ओर से, सरकार की ओर से उनकी प्रयोजनीय वस्तुओं की ओर नजर अन्दाज किये रहने की स्थिति का संकेत है।

लेडेंग के निवासी अपने को केंचुआ मानते हैं। धनू पंडित कहते है–''केंचुआ माटी के साथ रहता है, माटी को बनाता है, खाता है, खोदता है। मर जाने पर मिट्टी की शक्ति बढ़ाता है, हम भी वही हैं। किसी राजा की, या युद्ध की बात हमारी बात नहीं हैं।'' संघर्ष शीलता

मनुष्य के रूप में जीवन यापन करना आदिवासी अपना धर्म समझते हैं। इसे पूरा करने के लिए वे एकजुट होकर आगे बढ़ते हैं। विज्ञान और तकनीक के निरंतर विकास के बारे में वे सुना करते तो कतई उसमें विश्वास नहीं करते। कारण कि इनकी दुनिया भिन्न है। यहां अनुभव को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। 'आंखों देखी' में उनकी आस्था प्रकट होती है। निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–''अगर कहो कि अमुक जंगल में हाथियों के भी पंख होते हैं और वे उड़ते हैं, तो क्या हम विश्वास करेंगे। जरूर उस देश में और कोई जड़ी-बुटी मिलती होगी, जिसे शराब में मिलाने पर नशा और तेज हो जाता होगा।''

'बघेई' में चित्रित समाज लेखक के आसपास का समाज है। इसके चरित्र गोपीनाथ की जमीन से उभरे हैं। अपने चरित्रों के नख-सिख चित्रण करना वे नहीं भूलते। इससे वे जीवंत भी प्रतीत होते हैं। 'बघेई' के साजार्थिक संदर्भों में गोपीनाथ बाबू के पात्र खास किस्म के हैं। वे पारंपरिक प्रोटागोनिस्ट नहीं हैं। जीवन की क्षणभंगुरता भले ही यहां वर्णित है लेकिन खोती जा रही है संवेदना और मूल्य-संकट के बारे में भी रचनाकार सावधान प्रतीत होता है। पराजय में भी जीवन संघर्ष से मुक्ति नहीं मिल सकती। अनवरत संघर्ष और उम्मीद को बचाए रखने की शैली को गोपीनाथ जी ने महत्व दिया है। व्यक्ति चरित्र के प्रतिष्ठित रूपबोध का बदलकर आत्मिक विकास की ओर उन्मुख करना तथा अदम्य विश्वास बनाए रखने को आग्रह स्पष्ट जाहिर होता है। इस समाज में पराजयबोध नहीं है बल्कि नई आशा व संभावनाओं के सहारे आदिवासी जीवन की अजेयता के मूलमंत्र को प्रतिष्ठित किया गया है। फलस्वरूप, फटेहाल हो रही आर्थिक विसंगतियां सामाजिक संदर्भ में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

7-6 ^c?kbZ dgkuh dh izrhdkRedrk

'बघेई' कहानी में खास कोई निश्चित कथा नहीं है। पारंपरिक ओड़िया कहानी की कथा कहने की शैली को लेखक ने अस्वीकार किया है। आपने भी ध्यान दिया होगा कि इस लंबी कहानी में बाघ के आतंक, आदिवासियों का बाघ-शिकार हेतु अभियान जैसी एक-आध घटनाओं के अलावा कोई कथा-क्रम नहीं है। हां, पूरी कहानी में गोपीनाथ महंति ने बाघ का उल्लेख विविध परिप्रेक्ष्यों में किया है।

आदिवासी समाज बाघ के प्रकोप से आतंकित है। बाघ की उन्मत्ता के चलते चारों ओर भय और दहशत भरा वातावरण छाया रहता है। बाघिन ने पहले पहल गाय या भैंस या बैल घसीटकर खाना शुरू किया। फिर वह प्रचंड रूप धारण करती है। उसका भय जन-जन में व्याप्त हो गया। बाद में उसने आदमी का शिकार करना शुरू कर दिया। लेखक ने इस स्थिति का चित्रण किया है–''लोगों जानवरों पर बंदिश लगा दी पनहे में बांधकर गांव में ही रखा। भूख से भले उनके पेट में आग जलने लगी। फिर भी उन्हें खोला नहीं गया।..... लेकिन उसके बाद शुरू हुआ असल 'बघेई'–बाघ आदमी खाने लगा।

बाघ का आदमी खाना उसके विरोधी स्वभाव का प्रतीक है। मनुष्य और मनुष्यता विरोधी शक्तियों के पराजित करना किसी व्यक्ति विशेष से संभव नहीं है। आदिवासी समाज के लोग बाघ यानी मनुष्य विरोधी शक्ति को मारने के लिए संघबद्ध जीवन जीते हैं सामूहिक प्रयास करते हैं। यथसामर्थ्य उसे चुनौती देते हैं। सदियों से उनके मन में व्याप्त आतंक को समाप्त करना चाहते हैं।

इस कहानी में बाघ जनतंत्र का हत्यारा भी है। अपने मनमानेपन और उच्छृंखल प्रवृत्ति से वह जनता के अधिकारों का हनन करता है। 'अमानुष, नृशंस और पापी' बाघ केवल एक

हिंस्र जानवर नहीं है, यह स्वेच्छचारिता का भी प्रतीक है। दमन और शोषण के आधार पर आम आदमी पर आतंक बरसाने वाले शासक का भी प्रतीक है।

कहानीकार ने 'बाघ' की सर्वकालिकता और सार्वभौमिकता को स्पष्ट शब्दों में चित्रित किया है–'' हर युग में, हर जगह बाघ निकला है और उसने शिकार किया है। संसार में जितने दिनों तक मनुष्य नाम का प्राणी जीवित है, बाघ नामधारी जंतु जिंदा है, किसी न किसी जगह आदमी को बाघ खा ही रहा होगा।''

बाघ हर युग में हर देश में होता है। अर्थात् बाघ अन्याय का प्रतीक है। आदिवासियों ने उस बाघ का विरोध किया है जो मनुष्य-समाज को अपने अधिकारों से वंचित करता है। यह अलग बात है कि बाघ का मुकाबला करने के लिए उनके पास पारंपरिक अस्त्र-शस्त्र ही है। लेकिन युद्ध केवल अस्त्र-शस्त्रों से नहीं जीता जाता। विजय के लिए अदम्य साहस चाहिए जो आदिवासियों के पास होता है। यह अलग बात है कि अंधविश्वास को आधार बनाकर वे रण-क्षेत्र में पहुँच रहे हैं। लेकिन उन्हें तो इससे प्रेरणा मिलती है। देवी-पूजन से हो या बलि-प्रथा से। उनका उद्देश्य पाक् है–अन्याय का विरोध और शोषण का प्रतिरोध।

7-7 Hkk"kk-'kSyh dk Lo:i

फकीरमोहन के पश्चात् गोपीनाथ महंति ने भाषा के संदर्भ में अपनी खास पहचान बनाई। गोपीनाथ की कहानियों में भाषा एक महत्वपूर्ण साधन है। उन्होंने भाषा का विश्लेषणात्मक रूप प्रस्तुत किया है जो काव्यमयी भाषा (Colloquial Language) के रूप में विशेष महत्व की है। कहानीकार ने अपनी तमाम कहानियों में आदिवासियों की भाषा, बोली वाणी आदि को सहज ही अपनाया है। 'बघेई' में भी यह प्रयोग मिलता है।

गोपीनाथ ने परिवेश अथवा व्यक्ति के बाह्यरूप की तुलना में अंतर्मन की तस्वीर को उकेरने में अधिक महत्व दिया है। इसी क्रम में उन्होंने तमाम ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक शब्दों (Onomatopoetic word) का भी खूब प्रयोग किया है बिंबों (image) प्रतीकों (symbol) के प्रयोग से उनकी भाषा में प्राणवंतता आई है, रोचकता बनी है तथा यह सरसता से परिपूर्ण हुई।

'बघेई' कहानी का अनुवाद आपके पाठ में शामिल है। मूल कहानी ओड़िया भाषा में लिखी गई है। इसलिए अनुवाद में मूल भाषा के वैशिष्टयों को बचाए रखना असंभव-सा है। फलस्वरूप, चित्रात्मक भाषा, बिंब, प्रतीक, अनुकरणात्मक शब्द, बोलचाल की भाषा के प्रयोग के उदाहरण प्रस्तुत नहीं किये जा रहे हैं। लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि गोपीनाथ कथा-भाषा के सचेतन कलाकार है। अपने कथन को महत्त्व प्रदान करने के लिए, भाव को शब्दायित करने के लिए कहानीकार ने अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया है।

गोपीनाथ की कहानी मानव की खोज और मनुष्यता की तलाश करती है। जनजातीय और आदिवासी जीवन को चित्रित करने तथा शोषण, पीड़न और उपेक्षा से भरे जीवन को रूपायित करने में समर्थ है। कहानीकार ने ऐसे लोगों के मनस्तत्व को भी सही ढंग से अपनी विशिष्ट शैली में उकेरा है। उनकी कथा-दुनिया में आदिवासी प्राण, भाषा और परिवेश जीवंत हुआ है। इसका मूल कारण गोपीनाथ महंति की समर्थ भाषा-शैली है जिसे उन्होंने समाज का अंग बनाकर अर्जित किया था।

7-8 lkjka'k

आदिवासी समुदाय के साहित्य में हाशिए का समाज माना जाता है। इसके साहित्य को लोक साहित्य के अंतर्गत भी रखा जाता रहा है। आज सबऑल्टर्न स्टडीज में इसका विशेष महत्व रहा है। आदिवासी समुदाय से संबंधित साहित्य की जोर-शोर से चर्चा इधर के ही कुछ वर्षों में हो रही है। लेकिन पिछली शताब्दी के चौथे दशक से गोपीनाथ महंति ने आदिवासियों के बीच में रहकर उनकी खूबियों-कमजोरियों, सामर्थ्य और सीमाओं को सफलता के साथ चित्रित करना शुरू किया था। उन्होंने आधी शताब्दी से भी अधिक समय 56 वर्ष तक कहानियाँ लिखीं। इनमें अधिकांश कहानियाँ आदिवासी जीवन संदर्भों से युक्त हैं।

'बघेई' शीर्षक कहानी में आदिवासी जन-जीवन का मार्मिक चित्रण है। आदिवासी जीवन के अनेक चित्र इस कहानी से उभरते हैं। सहज विश्वास हो या स्वाभिमान, अंधविश्वास हो या अशिक्षा, डर हो या सौहार्द्र—सब कुछ कलात्मक ढंग से अभिव्यंजित हैं। आदिवासी न तो देवता हैं और न राक्षस। वे मनुष्य हैं। जनतांत्रिक मूल्यों के समर्थक हैं तभी तो उनका एक मुखिया है—धूर्व सिंह। जो बघमार अभियान में नेतृत्व प्रदान करता है। वह स्वयं बाघ का शिकार जरूर हो जाता है लेकिन सामने से नेतृत्व प्रदान करते हुए वीरगति को प्राप्त करता है। बाघ प्रतीक है जनतांत्रिक मूल्यों के संहारक का। भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कवि सीताकांत महापात्र ने 'बघेई' कहानी पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—'' कोरापुट की पर्वतश्रेणियों के बीच रहने वाले आदिवासियों के जीवन में बाघ या बाघिन की उन्मत्तता के चलते चारों तरफ विचित्र भय का वातावरण छा जाने और लोगों के घरों के दरवाजे बंद हो जाने की घटना को गोपीनाथ जी ने गणतंत्र की हत्या के समांतर देखा है। मानो परिवेश की भिन्नता के बावजूद यह छुट्टा मतवालापन और जनसाधारण के मन में व्याप्त भय एक जैसे है। दृष्ट राजनीति, मतवाली बाघिन की तरह ही है।''

प्रकृति संतान आदिवासी अपने जंगल से बेहद प्रेम करते हैं। जंगल की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कहानीकार ने आदिवासी जन-जीवन के चित्रण के माध्यम से पर्यावरणीय चिंता की ओर भी इशारा किया है। आप इस कहानी का पर्यावरण के संदर्भ में भी विवेचन कर सकते हैं।

गोपीनाथ महंति ओड़िया भाषा में लिखने वाले प्रसिद्ध भारतीय कथाकार हैं। 1994 में साहित्य अकादेमी की संगोष्ठी में बंगला की प्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी ने कहा था—'अमृत की संतान' मेरे लिए एक धर्मग्रंथ है। मेरी रचना और शैली पर इसका प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण है। गोपीनाथ मेरे लिए एक अलौकिक अनुभूति लेकर आते हैं। उनकी भाषा की कविताई मुझे मुग्ध करती है।''

स्पष्ट है कि गोपीनाथ महंति ने ओड़िया साहित्य को ही नहीं भारतीय भाषाओं के साहित्यों को भी प्रभावित किया है।

7-9 vH;kl

1) गोपीनाथ महंति के कथा-साहित्य में अभिव्यंजित आदिवासी जन जीवन पर प्रकाश डालिए।

2) ओड़िया कहानी-जगत् में चित्रित आदिवासियों के जीवन-संघर्ष का विवेचन कीजिए।

3) 'बघेई' कहानी के आधार पर आदिवासियों की धार्मिक चेतना पर विचार कीजिए।

4) 'बघेई' कहानी की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट कीजिए।

5) 'बघेई' का आशय स्पष्ट करते हुए धूर्व सिंह और धनू पंडित के चारित्रिक वैशिष्ट्यों पर प्रकाश डालिए।